भारत की भाषाएँ
और
भाषा संबंधी समस्याएँ

लेखक

श्री सुनीतिकुमार चट्टोपाध्याय

एम. ए., डी. लिट् (लंडन),

फेलो

रायल एशियाटिक सोसाइटी, बंगाल,

भारतीय भाषातत्त्व के खैरा प्रोफेसर

कलकत्ता विश्वविद्यालय

अनुवादक

श्री महादेव साहा
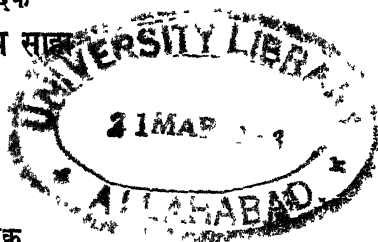
प्रकाशक

हिन्दी भवन

जालन्धर और इलाहाबाद

१९५१

प्रकाशक—
इन्द्रचन्द्र नारंग
हिन्दी-भवन
३१२ रानी मंडी
इलाहाबाद

मूल्य ३)

मुद्रक—
इन्द्रचन्द्र नारंग
हिन्दी-भवन मुद्रणालय
३१२ रानी मंडी
इलाहाबाद

लेखक का संक्षिप्त परिचय

अध्यापक सुनीतिकुमार चट्टोपाध्याय आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं—बँगला, असमिया, बिहारी, हिन्दी, राजस्थानी आदि—के अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के आचार्य हैं। काल्डवेल ने द्राविड भाषाओं के लिए, ट्रम्प ने सिन्धी के लिए, बीम्स ने आधुनिक आर्य भाषाओं के लिए, हार्नली ने गौड़ीय भाषाओं के लिए, केलाग ने हिन्दी के लिए प्लाट्स, लायल आदि ने हिन्दुस्तानी के लिए, टेस्सीटोरी ने राजस्थानी के लिए जो पाण्डित्यपूर्ण काम किया है उससे कहीं अधिक विशाल, पाण्डित्यपूर्ण और वैज्ञानिक काम सुनीति बाबू ने बँगला के लिए किया है।

सुनीति बाबू का जन्म २६ नवम्बर १८९० (कार्त्तिकी पूर्णिमा) को शिवपुर (हावड़ा) में हुआ था। इनके वंश-प्रतिष्ठाता पूर्वज काश्यप गोत्रीय वीतराग सामवेदी कान्यकुब्ज ब्राह्मणों में थे। ११वीं शताब्दी के अंत में इनके पूर्वज बंगाल में जा बसे थे। इनके पितामह ईश्वरचन्द्र चट्टोपाध्याय ने संस्कृतज्ञ पंडितों के घर में सब से पहले फारसी तथा अंगरेजी सीखी थी। इनके पिता कलकत्ते के सुकिया स्ट्रीट मुहल्ले में रहते थे और स्वामी विवेकानन्द के सहपाठी थे।

इनकी १२ वर्ष की अवस्था में माता कात्यायनी देवी का देहान्त हो गया था। पिता स्वर्गीय हरिदास चट्टोपाध्याय ने बड़े स्नेह से अपनी छः सन्तानों का पालन और शिक्षण किया था। हरिदासजी एक अंग्रेजी दफ्तर में नौकर थे, कानफिडेंशल क्लर्क के पद पर पहुँच गए थे। उनको

संगीत की अच्छी जानकारी थी। १९४५ ई० में ८४ वर्ष की अवस्था में उनकी मृत्यु हुई।

सुनीति बाबू बचपन से ही बड़े तेज़ विद्यार्थी रहे। इनकी विश्व-विद्यालय तक की शिक्षा कलकत्ते में हुई। बचपन से ही भाषाओ को सीखने की ओर झुकाव रहा। १९११ में इन्होने कलकत्ता विश्वविद्यालय की बी० ए० (अंग्रेज़ी आनर्स) तथा १९१३ में एम० ए० की अंग्रेजी परीक्षा पास की। दोनों ही परीक्षाओं में ये विश्वविद्यालय मे सर्वप्रथम आए। एम० ए० इन्होंने जर्मेनिक भाषाओं—विशेषतः प्राचीन तथा मध्यकालीन अंग्रेज़ी का विशेष अध्ययन किया। इसके साथ ही साथ इन्होंने वैदिक संस्कृत का गंभीर तथा ग्रीक और लैटिन का प्रारंभिक अध्ययन किया।

आगे चलकर अंग्रेजी भाषा का इतिहास और जर्मेनिक भाषाएँ पढ़ीं। अंग्रेजी भाषा के अध्ययन में अनुसंधान की नई पद्धतियों के प्रयोग को देखकर सुनीति बाबू अत्यधिक उत्साहित हुए। इन यूरोपीय भाषाओं का बँगला से भी वैसा ही सम्बन्ध होने के कारण इनकी दृष्टि उधर पहुँची। इन्होंने डटकर भाषा विज्ञान का अध्ययन शुरू कर दिया। मारिस, स्कीट, स्वीट, राइट, जेसपारसेन से लेकर हेलफेनस्टीन, वाकरनागेल, ह्विट्नी, पिश्चेल, बीम्स, भांडारकर, हार्नली, ग्रियर्सन आदि को अपने पथ-प्रदर्शन के लिए पढ़ने के साथ साथ अपनी मातृ-भाषा के अध्ययन में भी उसका प्रयोग करते हुए कलकत्ता विश्वविद्यालय में अंग्रेजी और तुलनात्मक भाषा विज्ञान के सहकारी अध्यापक और लेक्चरार का काम भी बड़ी योग्यता से निभाते रहे। १९१९ में इन्होंने विख्यात प्रेमचन्द्र रायचन्द स्कालर-शिप (पी० आर० एस०) के तीन साल के अनुसंधान के लिए 'बँगला

भाषा का ऐतिहासिक तुलनात्मक व्याकरण' पर निबन्ध की योजना पेश की। बँगला ध्वनि विज्ञान पर 'आधुनिक बँगला की ध्वनियाँ' पर एक निबन्ध नमूने के तौर विश्वविद्यालय के सामने रखा। आचार्य रामेन्द्र सुन्दर त्रिवेदी और महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री ने इनकी योजना का अनुमोदन किया। अगले साल विश्वविद्यालय जुबिली अनुसंधान पुरस्कार के लिए Comparative Philology with special reference to the Bengali Dialects. विषय घोषित होने से सुनीति बाबू ने अपने अनुसंधानो को निबन्ध के रूप में पेशकर यह पुरस्कार प्राप्त किया। पी० आर० एस० की तीन साल की छात्रवृत्ति के लिए इन्होने बँगला में फारसी तत्त्व, बँगला क्रियाएँ, प्राचीन बँगला चर्यापद और बँगला की ध्वनियों पर निबन्ध लिखे।

१६१६ में भारत सरकार ने यूरोप में संस्कृत के वैज्ञानिक अध्ययन के लिए सुनीति बाबू को चुना। १६१६-२२ तक इन्हें लन्दन और पेरिस के विश्वविद्यालयों में अध्ययन और अनुसंधान के लिए रहना पड़ा। लन्दन में इन्होंने प्रसिद्ध ध्वनिशास्त्री डेनियल जोन्स से 'ध्वनि विज्ञान', डा० एफ० डबल्यू टामस से 'योरोपीय भाषा विज्ञान', एल० डी० बार्नेट से 'प्राकृत तथा भारतीय आर्य भाषा,' 'सर डेनियल रास से 'फारसी,' प्रो० राबिन फ्लावर से 'पुरानी आयरिश' और प्रो० चेम्ब्रर्स तथा ग्रैटन से 'अँगरेजी' व 'गाँथिक' भाषाओं का अध्ययन किया। १६२१-२२ में ये पेरिस विश्वविलद्यालय में भर्ती हुए। यहाँ प्रो० भ्यूल ब्लाक, आॅत्वान मेइये भाँ प्रशिलुस्कि तथा प्रो० पॉल पेलिओ के तत्त्वावधान में 'भारतीय आर्य', 'स्लाव', 'भारोपीय', 'आस्ट्रो एशियाटिक', 'सोगदियन,' 'पुरानी' खोतनी' एवं 'ग्रीक' तथा 'लैटिन' भाषाओं का गंभीर अध्ययन किया। सिल्वाँ लेवी

से भी पढ़ने का मौका इन्हें मिला भारत में क्लासिकल विद्याओं के अध्ययन की परम्परा यह रही है कि जो जिस विषय का अधिकारी पंडित माना जाता है उससे ही उसका अध्ययन किया जाय। यूरोप में भी गंभीर अध्ययन की यह प्रथा है। सुनीति बाबू ने भी इसी के अनुसार अपना अध्ययन किया।

१९२१ में 'बँगला भाषा की उत्पत्ति और विकास' पर इनका निबंध लन्दन विश्वविद्यालय में 'डि० लिट' के लिए स्वीकृत हुआ। ग्रियर्सन, ब्लाक आदि जिन महापंडितों की देखरेख और आधुनिक यूरोप के जिन महान भाषा-विज्ञान के आचार्यों से अध्ययन के पश्चात् इन्होंने अपनी ऐतिहासिक थीसिस तैयार की, जहाँ तक भारत मे भाषा-विज्ञान का सम्बन्ध है आज तक किसी दूसरे विद्वान ने नहीं किया। ४५० आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं और बोलियों के अद्वितीय पंडित और ज्ञाता स्वर्गीय जार्ज ग्रियर्सन ने सुनीति बाबू के निबन्ध की भूमिका में लिखा था कि—Hitherto the ordinary Bengali grammars have been silent about the history of the language and the origin of its forms, and in popular books published in India, the wildest theories about these have occasionally been put forth without a shadow of justification. On the other hand, Beames, Hoernle and Bhandarkar have written much that is illuminating in regard to it, but sufficient materials were not available to any of them for dealing with the many points of phonetics, accidence and vocabu-

lary that present themselves on closer examination. For this reason we heartily welcome Prof. Chatterjee's labours...Endowed with a thorough familiarity with Bengali he has been able to bring together an amount of material which no European could ever have hoped to collect, and he had the farther advantage of pursuing his theoretical studies under the guidance of some of the European authorities on Indian philology. This work is accordingly the result of a happy combination of proficiency in facts and of familiarity with theory and exhibits a mastery of detail controlled and ordered by the sobriety of true scholarship (Foreword to Origin and Development of Bengali Language, p. VI—VII, Calcutta, 1926)

यूरोप में अपना अध्ययन समाप्त कर १९२२ में सुनीति बाबू देश लौटे। इसी वर्ष वह कलकत्ता विश्वविद्यालय में 'भारतीय भाषा-विज्ञान के खैरा प्रोफेसर' नियुक्त किए गए। तब से आज तक ये इसी पद पर काम करते हुए अपने पाण्डित्य और चरित्र से एक से एक विद्वानों को तैयार कर रहे हैं, आधुनिक भारतीय आर्य-भाषाओं के पठन-पाठन और अनुसंधान के क्षेत्र को बड़ी लगन के साथ आगे बढ़ा रहे हैं। इनकी उपर्युक्त थीसिस ने भाषाओं के अध्ययन के क्षेत्र में एक युगान्तर उपस्थित कर दिया है। इसी की प्रेरणा से और कितने ही क्षेत्रों में इन्हीं की देखरेख में दूसरी आधुनिक आर्य-भाषाओं पर

विद्वानों ने काम किया है। असमिया की उत्पत्ति और विकास पर वाणीकान्त काकति, भोजपुरी पर उदयनारायण तिवारी, मैथिली पर सुभद्र झा, चटगाँव की बोली पर कृष्णपद गोस्वामी, पूर्वी बंगाल की बोलियो पर गोपाल हालदार, आर्य-भाषा में अनार्य-तत्त्व पर प्रणवेश सिंह आदि विद्वानों ने गंभीर काम किया है। बाबूराम सक्सेना ने अवधी के विकास और धीरेन्द्र वर्मा ने ब्रजभाषा पर किये काम यद्यपि सुनीति बाबू की देखरेख में नहीं किये फिर भी उन्हें इनके काम से प्रेरणा अवश्य मिली है।

विश्वविद्यालय में अध्ययन के साथ ही सुनीति बाबू विभिन्न प्रकार के सांस्कृतिक और साहित्यिक कामों में डटकर भाग लेते हैं, अपने परिपक्व पाण्डित्य के फल भी देते रहते हैं। काम के सिलसिले में देश-विदेशों के घूमने में भी ये अपना सानी नहीं रखते। भारत का कौन ऐसा विद्वान होगा जो इनके नाम से और कुछ दूर तक काम से परिचित न हो?

रवीन्द्रनाथ से सुनीति बाबू की घनिष्ठता पहले युद्ध के समय से ही थी जब कि दोनो ही प्रमथ चौधुरी द्वारा सम्पादित 'सबुज पत्र' में लिखा करते थे। रवीन्द्रनाथ इनके पाण्डित्य के अनन्य प्रशंसक थे। सुनीति बाबू के अध्ययन-विषयों में इनसे सलाह लिया करते थे। यही कारण है कि जब १६२७ में कवि द्वीपमय भारत के भ्रमण के लिए जाने लगे तो इन्होंने सुनीति बाबू को ही अपना पथ-प्रदर्शक बनाया। कवि के साथ उन्होंने मलय, जावा, सुमात्रा, बालि तथा स्याम में तीन महीने भ्रमण किया। इस यात्रा में इन्होंने भारतीय कला और संस्कृति पर अनेक भाषण दिये। १६३५ में ये कलकत्ता विश्वविद्यालय के प्रतिनिधि के रूप में लन्दन में होने वाले द्वितीय अन्तर्राष्ट्रीय-ध्वनि-

विज्ञान-सम्मेलन में सम्मिलित हुए । इसमें इन्होंने भारतीय शाखा का सभापतित्व किया । सुनीति बाबू की यह एक आदत सी बन गई है कि जब जब ये यूरोप जाते हैं समय मिलने पर महादेश के भिन्न-भिन्न विद्याकेन्द्रों का भ्रमण कर विभिन्न विषयों के पंडितों और वहाँ होने वाले अनुसंधानों की प्रत्यक्ष जानकारी हासिल कर लेते हैं । अपनी इस यात्रा में इन्होंने आस्ट्रिया, हुंगरी, चेकोस्लोवाकिया, इटली और जर्मनी का भ्रमण किया, वहाँ के विद्वानो से संसर्ग किया । इस यात्रा से लौट कर इन्होंने 'यूरोप १६३५' नामक पुस्तक लिखी ।

१६३६ में ये बंगाल की एशियाटिक सोसायटी के फेलो निर्वाचित हुए और बंगीय साहित्य सम्मेलन के रंगून अधिवेशन का सभापतित्व किया । १६३८ में कलकत्ता विश्वविद्यालय के प्रतिनिधि के रूप में तीसरी बार यूरोप की यात्रा की । इस यात्रा में ये बेलजियम के गेएट नगर में होने वाले तृतीय अन्तर्राष्ट्रीय ध्वनि-विज्ञान-सम्मेलन, कोपेन-हेगेन में होने वाले नृतत्व-सम्मेलन तथा ब्रुसेल्स के अन्तर्राष्ट्रीय प्राच्य-विद्या सम्मेलन में सम्मिलित हुए । इस यात्रा का विवरण इन्होंने अपनी 'यूरोप १६३८' पुस्तक में दिया है । १६३६ में ये पोलैंड के प्राच्य-परिषद् के माननीय सदस्य निर्वाचित हुए और १६४६ में हिन्दी साहित्य सम्मेलन के ३४ वें अधिवेशन (कराची) में राष्ट्रभाषा परिषद् के सभापति बने । इसी वर्ष ये पेरिस की एशियाटिक सोसायटी तथा अगले वर्ष अमेरिकन ओरियंटल सोसायटी के माननीय सदस्य निर्वाचित हुए । १६४८ में इन्होंने यूरोप की चौथी यात्रा की । इस यात्रा में इन्होंने पेरिस में होने वाले अन्तर्राष्ट्रीय प्राच्य-विद्या-सम्मेलन में कलकत्ता विश्वविद्यालय तथा भारत सरकार का प्रतिनिधित्व

किया। १९४९-५१ में इनको तीन बार अंधों के लिए ब्राइल लिपि के सम्बन्ध में यूरोप जाना पड़ा। इन अवसरों पर इन्होंने हालैंड, इटली और तुर्की तथा लेबानन का भी भ्रमण किया।

भारत के प्रायः सभी विश्वविद्यालयों एवं भारतीय भाषा साहित्य और इतिहास सम्बन्धी अनुसंधान में प्रवृत्त संस्थाओं से सुनीति बाबू का घनिष्ठ सम्बन्ध है। भारत के भाषा-शास्त्रियों में आज ये सर्वमान्य और सर्वश्रेष्ठ माने जाते हैं। अभी कुछ दिन पहले अमरीका के पेनसिलवानिया विश्वविद्यालय ने इन्हें दक्षिण एशिया की भाषाओं के वैज्ञानिक अध्ययन पर भाषण देने के लिए विसिटिंग प्रोफेसर की हैसियत से निमंत्रित किया है। इस समय ये अमरीका में हैं।

भाषा-विज्ञान के साथ ही सुनीति बाबू प्राचीन लिपि, मूर्त्ति, चित्र एवं सगीत कला के ममज्ञ हैं। एशिया, यूरोप और अफरीका की संस्कृति के ये महान पंडित हैं। ये अपने जीवन में विभिन्न धर्मों और संस्कृतियों के समन्वय के लिए सतत प्रयत्नशील रहते हैं। गुजरात विद्यापीठ में 'इंडो-आर्यन-एंड हिन्दी' पर भाषण के प्रारम्भ में इन्होंने संस्कृत, प्राचीन फारसी, तमिल और अरबी में प्रार्थना की, लेकिन धर्म को ये अपने वैज्ञानिक कामों से सदा अलग रखने की चेष्टा करते हैं। इनकी पुस्तकों में जहाँ कहीं इसका अपवाद देखा जाता है वहाँ एकाध त्रुटियाँ दिखाई पड़ जाती हैं। सुनीति बाबू किसी राजनीतिक दल में नहीं है पर इनकी मित्रमंडली और शिष्यो में सभी राजनीतिक विचारों के लोग हैं।

किसी से किसी प्रकार का भेद भाव नहीं मानते। यथासभव सब की सहायता करते रहते हैं। मेरी जिन्दगी का एक हिस्सा जेलों में बीतता रहा है। यह सुनीति बाबू जैसे मित्र की ही कृपा है कि लिखाई-

पढाई अपना पेशा न होने पर भी उस दुनिया की प्रगति से परिचित रहने की चेष्टा करता हूँ।

यह परिचय हिन्दी के पाठकों के लिए होने के कारण उन्हें सुनीति बाबू की हिन्दी को देन के विषय में जान लेना अच्छा होगा। भारत की आर्य-भाषाओं के इतिहास, खास करके बंगला के इतिहास, की चर्चा करते समय भारतीय भाषाओं की परम्परा में हिन्दी के महत्त्व पर सुनीति बाबू के मन में गंभीर आकर्षण हुआ। धीरे-धीरे ये हिन्दी के प्रेमी बने, हिन्दी को अपनाया। इनका पहला हिन्दी निबन्ध 'हिन्दी की उत्पत्ति' १६३१ के हिन्दी साहित्य सम्मेलन के कलकत्ता अधिवेशन में पढ़ा गया और जून १६३१ के 'विशाल भारत' में प्रकाशित हुआ*। इसे पढ़कर पद्मसिंह शर्मा ने उपर्युक्त पत्र के तत्कालीन सम्पादक बनारसीदास चतुर्वेदी को एक पत्र लिखा था। पाठकों की जानकारी के लिए पत्र का कुछ अंश यहाँ दिया जा रहा है—

"जून का 'विशाल भारत' मिला। इस अंक में डा० सुनीतिकुमारजी चट्टोपाध्याय का 'हिन्दी की उत्पत्ति' लेख बहुत ही अच्छा है। भाषा की बड़ी ही सुन्दर मीमांसा है। यह लेख तो पृथक पुस्तकाकार मे प्रकाशित होकर हिन्दी वालों के कोर्स में नियत होना चाहिए। हिन्दी के सम्बन्ध में ऐसा तथ्य-पूर्ण लेख मैंने आज तक नहीं पढ़ा था। मुझे तो यह लेख इसलिए भी पसन्द आया कि भाषाओं की उत्पत्ति के विषय में मेरा भी यही मत है।...कलकत्ता सम्मेलन की मै तो इसे सबसे बड़ी सफलता समझता हूँ कि ऐसा महत्त्वपूर्ण निबन्ध हिन्दी में हिन्दी पर लिखा

---

* साहित्य भवन लि०, प्रयाग से प्रकाशित 'ऋतम्भरा' में संकलित।

गया । इसका खूब प्रचार होना चाहिए ।···चट्टोपाध्याय जी से एक ऐसा ही निबन्ध संस्कृत के सम्बन्ध में भी लिखने के लिए अनुरोध कीजिये । यह तो भाषा-विज्ञान के अद्भुत विशेषज्ञ मालूम होते हैं । 'हिन्दी की उत्पत्ति' पढ़कर मै गद्गद् हो गया । जिस चीज की खोज थी वह मिल गई ।···उन्हे मेरी हार्दिक बधाई और धन्यवाद पहुँचाइये ।" (नायक-नगला, २५।६।३१)

सुनीति बाबू ने अपनी हिन्दी की सेवा जारी रखी है । हिन्दी में साहित्य, समाज, इतिहास, भाषा-विज्ञान तथा संस्कृति-विषयक बहुत से निबंध लिखे हैं । हिन्दी के लिए इन्होंने पेरिस के अन्तर्राष्ट्रीय भाषा-विज्ञान सम्मेलन में व्याख्यान दिये, प्रचार किया । हिन्दी वाले भी सुनीति बाबू का लोहा मानते हैं; हिन्दी के सम्बन्ध में किसी भी कमेटी में इनकी उपस्थिति के बिना काम नहीं चलता । 'राजस्थानी भाषा' पर उदयपुर हिन्दी विद्यापीठ में दिये तीन भाषणों पर नागरी प्रचारिणी सभा ने इन्हे 'रत्नाकर पारितोषिक' दिया है ।

हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने इन्हें 'साहित्य वाचस्पति' की उपाधि देकर सम्मानित किया है । भारतीय संविधान मूल अंग्रेजी में है । उसका हिन्दी और संस्कृत अनुवाद करने के लिए विशेषज्ञो की जो समिति बनाई गई थी, सुनीति बाबू भी उसके सदस्य थे ।

प्रयाग

बड़ा दिन, '५१

अनुवादक

लेखक की प्रकाशित पुस्तकों की सूची

[क] अंग्रेज़ी

(१) ओरिजिन ऐंड डेवलपमेंट ऑफ दी बेंगाली लैंगुएज, २ जिल्द, कलकत्ता विश्वविद्यालय द्वारा प्रकाशित, १६२६ (बहुत दिन से अप्राप्य)

(२) बेंगाली सेल्फ-टाट—मारलाबारो 'स्वयं शिक्षक' पुस्तकमाला में, लन्दन, १६२७

(३) ए बेंगाली फोनेटिक रीडर, यूनिवर्सिटी आफ लण्डन प्रेस, १६२६

(४) इंडो आर्यन ऐंड हिन्दी—गुजरात वर्नाकुलर सोसायटी, अहमदा-बाद, १६४२

(५) लैंगुएजेज ऐंड लिंगुइस्टिक प्राब्लेमस, आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, १६४३ (तीसरा संस्करण, १६४६)

(६) किरातजन-कृति—एशियाटिक सोसायटी बंगाल, कलकत्ता, १६५१

(७) बेंगाली ग्रामर आफ मानोयेलदा अस्समसां (१६४३) पोर्तुगाली और बँगला में—प्रियरंजन सेन के साथ—कलकत्ता विश्वविद्यालय।

(८) नैशनल फ्लैग ऐंड आदर एसेज, कलकत्ता

[ख] बँगला

(१) बाँगला भाषातत्त्वेर भूमिका—कलकत्ता विश्वविद्यालय, पंचम संस्करण

(२) जाति साहित्य ओ सस्कृति—कलकत्ता, द्वितीय संस्करण

(३) पश्चिमेर यात्री (यूरोप १६३५), कलकत्ता, द्वितीय संस्करण

(४) द्वीपमय भारत, कलकत्ता

(५) भाषाप्रकाश बाँगला व्याकरण—कलकत्ता विश्वविद्यालय, तृतीय संस्करण ।

(६) संक्षिप्त भाषाप्रकाश बाँगला व्याकरण

(७) चंडीदास पदावली—प्रथम खंड—हरेकृष्ण मुखोपाध्याय के साथ—बंगीय साहित्य परिषद से प्रकाशित

(८) वैदेशिकी—कलकत्ता, २य संस्करण ।

(६) भारतेर भाषा ओ भाषा समस्या, कलकत्ता, द्वितीय संस्करण ।

(१०) इउरोप भ्रमण, १६३८ (दो खंड) कलकत्ता ।

(११) भारत-संस्कृति (८ निबंध), कलकत्ता ।

[ग] हिन्दी

(१) राजस्थानी भाषा (तीन भाषण)—मेवाड़, राजस्थान, १६५०

(२) ऋतम्भरा (११ निबंधों का संग्रह), प्रयाग, १६५१

(३) भारत की भाषाएँ और भाषा संबंधी समस्याएँ—हिन्दी भवन, प्रयाग, १६५१ ।

सूची

[१] भारत की भाषा-समस्या का स्वरूप क्या है ?

भारतवर्ष क्षेत्रफल में रूस को छोड़कर समग्र यूरोप-खण्ड के समान है। मूलतः भिन्न भिन्न प्रकार की नाना जातियों और नाना भाषाओं के लोग इस देश में आकर सम्मिलित हुए हैं; और भारतवर्ष की जनसंख्या समग्र संसार की जनसंख्या का पाँचवाँ भाग है। देश का विस्तार, अधिवासियों की संख्या और उनमें मौलिक जातिगत और भाषागत पार्थक्य इन सबको दृष्टि में रखने से यह सर्वथा स्वाभाविक है कि भारतवर्ष में अनेक भाषाएँ रहेंगी। इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं।

प्राचीनकाल और मध्ययुग में भाषा की यह विभिन्नता और बहुलता देश में समस्या के रूप में नहीं दिखाई पड़ी थी। जनता अपनी प्रान्तीय अर्थात् स्थानीय बोलचाल की भाषा को लेकर अपना दैनिक काम चलाती थी; और अभिजात या उच्च तथा शिक्षित वर्ग के लोग, जिनके हाथों में देश-संचालन का भार था, हिन्दूराज्य में संस्कृत भाषा की सहायता से और मुसलमानी राज्य में फारसी की सहायता से भारत के अन्दर अन्तःप्रादेशिक और भारत के बाहर की दुनिया से अन्तर्राष्ट्रीय काम-काज चलाते थे। इसके अलावा, देश भेद से भाषा भेद अर्थात् भाषा-भाषा में पार्थक्य तब भी था किन्तु आजकल

जितना दिखाई देता है, उतना नहीं था। अब परिवर्त्तन-धर्म के अनुसार, क्या आर्य क्या अनार्य अनेक प्रान्तीय भाषाएँ अस्तित्व में आई हैं। हजार बारह सौ या दो हजार वर्ष पहले देश में इतनी भाषाएँ या उपभाषाएँ नहीं थीं; देश के बड़े बड़े हिस्सों में तब एक-एक भाषा ही चलती थी। पंजाब से आसाम प्रान्त तक सीधे चले आने से, उत्तर-भारत के विशाल भूखंड में अब एक के बाद दूसरी निम्नलिखित भाषाएँ और उपभाषाएँ दिखाई पड़ती हैं—जैसे हिन्दकी या पश्चिमी-पंजाबी, पूर्वी-पंजाबी, जानपद-हिन्दुस्थानी, व्रजभाषा, कनौजी, अवधी या कोशली, भोजपुरी, मैथिली तथा मगही, बँगला, असमिया आदि। इसके अलावा इनके आस-पास सिन्धी, राजस्थानी या राजपूताने की भिन्न-भिन्न उपभाषाएँ, गुजराती, मराठी, बुन्देली, बघेली, उड़िया, हलबी, डोगरी, पाडरी, चमेआली, कुलुई, क्युएठाली, सिरमौड़ी, गढ़वाली, कुमाऊँनी तथा खसकुरा या पर्बतिया या नेपाली हैं। किन्तु आर्यभाषा के देश, इस समग्र उत्तर भारत में, हिमाचल और दक्षिणापथ में आज से दो हजार वर्ष पूर्व भाषा विभेद इतना नहीं था—तब इन सारी भाषाओं और उपभाषाओं के आदि रूप में चार, पाँच या छै प्रकार की भिन्न भिन्न प्राकृतें ही चलती थीं, और ये एक दूसरे के इतनी निकट थीं कि लोग परस्पर व्यवहार से इन्हें सहज ही में समझ लेते थे। तब दक्षिण भारत की द्राविड़ भाषाओं में मलयालम दो हजार वर्ष पूर्व की प्राचीन द्राविड़ या तमिळ भाषा से पृथक् नहीं हुई थी, कर्णाट या कानड़ी भाषा तमिळ के बहुत ही निकट थी, केवल

आन्ध्र या प्राचीन तेलुगु कुछ पृथक् थी; दूसरी द्राविड़ भाषाओं में उतनी विशेषताएँ नहीं आई थी। तब संथाली, मुण्डारी, हो, खाड़िया, कोरकु शबर, गद्‍ब इत्यादि आधुनिक कोल भाषाएँ संभवतः एक ही मूल कोल भाषा के अन्तर्गत थीं। उत्तर-भारत में, सिन्धु और गंगा के देश में, जो अनार्य भाषाएँ थीं, वे धीरे धीरे आर्य प्राकृतों के सामने लुप्त होती जा रहीं थीं, उनके बारे में किसी को सहानुभूति या चिन्ता नहीं थी। इसलिए भाषा के पार्थक्य को लेकर माथा-पच्ची करने का कारण प्राचीन काल में नहीं दिखाई पड़ा था।

किन्तु अब कालक्रम के परिवर्तन के कारण परस्पर अबोध्य या दुर्बोध्य अनेक भाषाओं का विकास दिखाई पड़ रहा है। पिछले हजार वर्ष के अन्दर भिन्न-भिन्न जनपदों की भाषाएँ अपने विशिष्ट साहित्य को लेकर उठी हैं और उठ रही हैं, जन-साधारण की शिक्षा और संस्कृति अब बहुत कुछ इन जानपद या प्रादेशिक (प्रान्तीय) भाषाओं का अवलम्बन करके ही चल रही है। अब सभी कामों में जन-साधारण को लेकर चलना पड़ता है—राजनीति के क्षेत्र में जन-साधारण को छोड़ देने से अब काम नहीं चलेगा। इसे हमारे राजनैतिक नेताओं ने अब भलीभाँति समझ लिया है। आज से एक हजार या आठ सौ या पाँच सौ वर्ष पहले हमारे धर्म-नेताओं ने इस बात का अनुभव किया था जिसके फलस्वरूप भिन्न-भिन्न धर्म-सम्प्रदायों की चेष्टा से आधुनिक भाषाओं में साहित्य की रचना होती रही और आधुनिक भाषाओं का साहित्य अस्तित्व में आया।

अब जन-साधारण की उपेक्षा करने से काम नहीं चलेगा, उनकी बोधगम्य भाषा में उन्हें बुलाना होगा—उच्चशिक्षित राजनीतिज्ञों या विद्वानों द्वारा व्यवहृत अंगरेजी भाषा से अब यहाँ काम नहीं चलेगा। एक ओर, जैसे भिन्न-भिन्न प्रतिष्ठित प्रान्तीय भाषाओं की उपेक्षा नहीं की जा सकती है, वैसे ही दूसरी ओर एक भाव-संकट दिखाई पड़ा है। अंगरेजों की कूटभेद-नीति के फलस्वरूप साम्प्रदायिकतावादी मुसलमानों में पाकिस्तानी मनोभाव दिखाई देने पर भी साधारण भारतवासी एक अखंड भारत के अस्तित्व ही में विश्वास करता है; भाषा, जाति और धर्म रहित एक भारतीय नेशन या जनगण (राष्ट्र) सचमुच ही है। यह भावना थोड़ी बहुत सब के हृदय में वर्तमान है। अब एक जाति या राष्ट्र में केवल एक ही भाषा का रहना उचित है—स्वजात्य या एक-जातित्व का सर्वप्रधान गुण या लक्षण है भाषा-साम्य. इसप्रकार की एक विचारधारा हम में से बहुतों को व्याकुल या उद्विग्न कर रही है। हम में से अनेक लोगों के मन में यह धारणा बद्धमूल हो रही है कि, एक अखंड-भारतीय राष्ट्र के प्रतीक-स्वरूप एक भारतीय भाषा होनी चाहिए। इस तरह की 'अखिल-भारतीय राष्ट्रभाषा' दो कारणों से हमारे लिए आवश्यक हो उठी है; एक, इस तरह की एक भाषा शायद हमारे 'खंडित छिन्न विच्छिन्न' भारत को एक-राष्ट्रीयता के सुदृढ़ बंधन में बाँधकर एक कर देने में सहायता पहुँचायेगी—भिन्न-भिन्न प्रादेशिक या प्रान्तीय भाषाओं का अवलम्बन कर भारतीय एकता को तोड़ने की जो सुप्त प्रवृत्ति है, 'अखिल-भारतीय राष्ट्र-

भाषा' उस प्रवृत्ति को बहुत कुछ नियंत्रित करने में सहायता करेगी—विकेन्द्रीकरण की चेष्टा को संयत करके केन्द्रीकरण में यह 'राष्ट्रभाषा' कार्यकर होगी; और दूसरा—भारत और भारतीयों के विरोधी अनेक विदेशी जो सदैव कहा करते हैं कि चूँकि जब भारत में बहुत सी भाषाएँ प्रचलित हैं, भारत की भाषा एक नहीं. कम से कम जब भारत में सर्वजन-स्वीकृत एक 'राष्ट्रभाषा' नहीं है, तो भारत को 'नेशन' या राष्ट्र या एकीभूत जनगण नहीं कहा जा सकता, भारत की एक-राष्ट्रता इसीलिए असंभव बात है, इसे भारतीयों को स्वीकार कर लेना चाहिए; अतएव एकता-विधायक राजशक्ति के हिसाब से अंग्रेजों का भारत में रहना मानो स्वतःसिद्ध है; इस प्रकार के भारत-विद्वेषी कथन का मुँहतोड़ जवाब होगा अखिल भारत द्वारा स्वीकृत एक 'राष्ट्रभाषा'। हिन्दी (हिन्दुस्तानी) यह ईप्सित राष्ट्रभाषा हो सकती है, यह प्रस्ताव देश के सामने उपस्थित किया गया है। इस समय हमारे देश के कितने ही राजनीतिज्ञों और विद्वानों के मन में इस प्रश्न ने एक बड़ा स्थान ले लिया है—कहाँ तक और किस तरह हम हिन्दी (हिन्दुस्तानी) को भारत की 'राष्ट्रभाषा' के तौर पर प्रतिष्ठित कर सकेंगे।

संसार के भिन्न-भिन्न देशों की बात पर विचारकर देखने से यह सहज ही में प्रतीत होता है कि देश में बहुत सी भाषाओं के अस्तित्व को नेशनहुड अर्थात् एक-राष्ट्रीयता या एक-गणत्व का बाधक नहीं कहा जा सकता। प्रायः देखा गया है कि, बहु-

भाषामय राष्ट्र में सुविधानुसार एक या एकाधिक भाषाएँ राष्ट्र-कार्य में काम में लाई जा रही हैं। इस विषय में स्विट्ज़रलैंड का उदाहरण सभी दिया करते है। स्विट्ज़रलैंड में चार भाषाएँ प्रचलित हैं, जर्मन, फ्रांसीसी, इतालीय और रेतो-रोमन (Rhaeto-roman); इनमें जर्मन और फ्रांसीसी प्रायः बराबर बराबर व्यवहृत होती हैं। स्विट्ज़रलैंड के अतिरिक्त और भी कितने ही छोटे और बड़े राष्ट्र हैं, जहाँ बहुभाषाओं का प्रचलन दिखाई पड़ता है। ब्रिटेन या ग्रेट-ब्रिटेन की बात पहले ही ली जा सकती है—आयरलैंड को छोड़ देने से भी ग्रेट ब्रिटेन द्वीप में तीन-तीन भाषाएँ प्रचलित हैं—अँगरेजी, वेल्श(Welsh), और गेलिक (Gaelic); इसके अलावा इनकी उपभाषाएँ हैं। बहुभाषामय राष्ट्रों में इनका नाम लिया जा सकता है—फ्रांस (फ्रांसीसी, प्रभाँसाँल Provençal, इतालीय, ब्रेतन Breton, बास्क Basque); स्पेन (स्पेनीय या कास्तिलीय, कातालान Catalan, बास्क); सोवियत्-राष्ट्र संघ (बहुभाषाएँ प्रचलित हैं, कुछ आर्यवंशीय, कुछ मंगोल-जातीय, कुछ काकेशीय गोष्ठी की हैं); चीन; मेक्सिको और मध्य तथा दक्षिणी अमरीका के राष्ट्र-समूह (सर्वत्र स्पेनिश, केवल ब्राज़ील में पोर्तुगीस, और अमरीका की नाना आदिम भाषाएँ); कनैडा (अँगरेजी और फ्रांसीसी तथा अमरीका के आदिवासी लाल मनुष्यों की कितनी ही भाषाएँ, और एस्किमो Eskimo); दक्षिण अफरीका (अँगरेजी, अफ्रिकान्स् Afrikaans या दक्षिण अफरीका में प्रचलित डच भाषा); इनके अतिरिक्त अफरीका की काले रंग

की जातियों और उपजातियों की बहुभाषाएँ); चेखो-स्लोवाकिया (चेख तथा स्लोवाक और जर्मन); Eire एइरे या आयरलैंड (आइरिश, अँगरेजी); बेलजियम (फ्रांसीसी और फ्लेमिश); और अफगानिस्तान (फारसी, पश्तो और इसके अलावा अल्प संख्यक तुर्कों और मंगोलों की भाषाएँ)। इनमें से कुछ देशों में दो-दो भाषाएँ सभी कामों में व्यवहार्य राष्ट्रभाषा स्वीकृत हैं, और उनका व्यवहार भी होता है, जैसे कनैडा में अंगरेजी और फ्रांसीसी, दक्षिण अफरीका में अंगरेजी और अफ्रिकान्स्, बेलजियम में फ्रांसीसी और फ्लेमिश, स्विटजरलैंड में जर्मन फ्रांसीसी इतालीय और रूमान (रेतो-रोमन), अफगानिस्तान में फारसी और पश्तो। अतएव भारतवर्ष के लोगों में अनेक भाषाएँ प्रचलित हैं, इस कारण ही भारतवर्ष एक-राष्ट्रीयता की पदवी से वंचित हो जाएगा, यह नहीं कहा जा सकता। भारतवर्ष की हालत इतनी निराशाजनक नहीं है। भारत के भाषासमूह का विवेचन स्वर्गीय सर जार्ज अब्राहम ग्रियर्सन अपने विराट Linguistic Survey of India के बीस खंडों में प्रकाशित कर गये हैं। इसमे उन्होंने भारतवर्ष में भाषाओं की संख्या १७९ और उपभाषाओं की संख्या ५४४ दी है। लेकिन इन दोनों संख्याओं को जरा समझ बूझकर लेना होगा। भाषाओं को जब ले रहा हूँ तो उसके अलावा अलग ५४४ उपभाषाओं अर्थात् बड़ी बड़ी भाषाओं की छोटी-छोटी प्रान्तीय शैलियों को गिनने की सार्थकता नहीं है। १७९ भाषाओं में ११६ भोट-चीन भाषा-गोष्ठी के अन्तर्गत कितनी ही छोटे छोटे कबीलों (Tribes) या उपजातियों की भाषाएँ हैं। इनमें

से प्रत्येक भाषा अति अल्प संख्यक लोगों में प्रचलित है। ये केवल उत्तर और उत्तर-पूर्व सीमान्त के पहाड़ी अंचल में सीमावद्ध हैं। ये ११६ भोट-चीन गोष्ठी की भाषाएँ समग्र भारतीय जनता के एक प्रतिशत से कम लोगों की भाषाएँ हैं। इसके अलावा प्रायः २४ और भाषाएँ अन्य भाषा-गोष्ठी के अन्तर्गत हैं जो नगण्य भाषाएँ हैं अथवा भारत के बाहर की भाषाएँ हैं जो भारत में आधुनिक काल में आये थोड़े बहुत लोगों में ही सीमित हैं।

इस बात को हमें हमेशा याद रखने की जरूरत है कि भारत जैसे विशाल देश में अनेक जातियों और उपजातियों के अपनी-अपनी भाषाओं और उपभाषाओं के व्यवहार करते रहने पर भी जो जातियाँ या जन-समूह संख्या में अधिक हैं, सभ्यता में अग्रसर हैं और संघ-शक्ति में सुनियंत्रित हैं केवल उन्हीं की भाषा की ही मर्यादा या मूल्य अथवा स्थान है। छोटी-छोटी उपजातियों की नगण्य भाषाएँ या उपभाषाएँ अथवा किसी-किसी क्षेत्र में, यहाँ तक कि सभ्यता में विशेषरूप से अग्रसर बहुसंख्यक जातियों या जनगणों की भाषाएँ भी, प्रान्तीय और संकीर्ण जीवन को आधार बनाकर ही रहती हैं; अपेक्षाकृत व्यापक या विशाल-तर जीवन के लिए इन तमाम उपजातियों या जनसमूहों के नर-नारियों का एक वृहत्तर साहित्य-संस्कृति-वाहिनी बड़ी भाषा के बिना काम नहीं चल सकता। जैसे ग्रेट-ब्रिटेन में वेल्श या गेलिक-भाषियों का काम अंगरेजी जाने बिना नहीं चलता, जैसे फ्रांस में प्रभाँसॉल, इतालीय भाषी कार्सिकन, बास्क और ब्रेतनों के लिए फ्रांसीसी का जानना अपरिहार्य है। इस पहलू से देखने

पर, केवल १५ बड़ी-बड़ी भाषाओं को ही आधुनिक भारत में स्वीकार कर लेना पड़ता है,—इनके सामने और भाषाओं तथा उपभाषाओं का उतना मूल्य नहीं। केवल ये भाषाएँ ही साहित्य तथा शिक्षा और परिवार तथा विशिष्ट समाज के बाहर वाले वृहत्तर जीवन में व्यवहृत हुआ करती हैं। इन १५ को ही भारत की प्रधान, मुख्य या साहित्यिक भाषा कहा जा सकता है; और इनमें कुछ की परस्पर से घनिष्ठता या सादृश्य को लेकर, तुलना में अप्रधान दो-एक को उनके निकटतम भाषा के अन्तर्गत कर लेने से, इस संख्या को १२ तक लाया जा सकता है। १५ मुख्य भाषाएँ ये हैं:—

उत्तर-भारत की बहुप्रचलित हिन्दी या हिन्दुस्तानी भाषा की दो भिन्न-भिन्न साहित्यिक शैलियाँ, (१) हिन्दी (या साधु-हिन्दी अथवा नागरी-हिन्दी) और (२) उर्दू—ये दोनों सचमुच में सम्पूर्णरूप से भिन्न-भिन्न दो लिपियों द्वारा और विदेशी शब्दों को लाकर एक ही भाषा की दो शैलियाँ हैं, (३) बँगला, (४) उड़िया, (५) मराठी, (६) गुजराती, (७) सिन्धी, (८) कश्मीरी; इनके अलावा हैं (९) पंजाबी और (१०) नेपाली—ये दोनों हिन्दी अर्थात् साधु-हिन्दी के विशेष निकट जाती हैं; और (११) आसामी—यह बँगला के साथ सभी दृष्टि से अत्यन्त निकट से सम्बन्धित है; उसके बाद दक्षिण की द्राविड़ भाषाओं को लेना पड़ता है—(१२) तेलुगु, (१३) कानड़ी, (१४) तमिळ और (१५) मलयालम।

भारत के आधुनिक काल की भाषाओं के संबंध में कुछ कहने

पर, इस बात पर विशेष जोर देना आवश्यक है कि उत्तर-भारत की आर्य-गोष्ठी की (ऊपर १-११ तक) भाषाओं को जो लोग व्यवहार करते हैं, उनमें हिन्दी (हिन्दुस्तानी) अति सहज और स्वाभाविक अन्तःप्रान्तीय सूत्र-स्वरूप विद्यमान है। इस हिन्दी (हिन्दुस्तानी) भाषा के कल्याण से प्रायः समग्र उत्तर-भारत (और दक्षिण के भी अनेक अंश के) निवासी परस्पर में भाषागत अन्तर का उतना अनुभव नहीं करते; कम से कम, बर्मा-सीमान्त से अफगान-सीमान्त तक और कश्मीर तथा नेपाल से गोआ और गंजाम तक एक अंचल से दूसरे अंचल में यात्रा में छोटे-छोटे विषयों में बातचीत की जो आवश्यकता पड़ती है, वह इसी हिन्दी (हिन्दुस्तानी) भाषा की सहायता से ही हुआ करती है। बिना परिश्रम से पाया हुआ हिन्दी का थोड़ा ज्ञान भी जीवन के लिए काफी होता है और दक्षिण-भारत के प्रधान-प्रधान तीर्थों में और बड़े-बड़े शहरों में, उत्तर-भारत की भाषाओं में एक हिन्दी को ही स्थानीय लोग कुछ-कुछ समझते हैं।

अनेक भाषाओं के होने के कारण भारत के राष्ट्रीय-जीवन में (अर्थात् प्रान्तीय और अन्तर्प्रान्तीय कृत्यों और कार्यों में) जो समस्याएँ पैदा हो सकती थीं, ऊपर उल्लिखित कई चीजों ने उन्हें बहुत कुछ सरल बना दिया है। सचमुच ही, भाषाएँ एकाधिक होने पर भी संख्या में मुख्य साहित्यिक भाषाएँ १६ से अधिक नहीं, और सार्वजनीन बोधगम्यता में और अन्तर्प्रान्तीय व्यवहार में हिन्दी भाषा एक बड़ा स्थान अधिकार किये हुए है।

संक्षेप में, भारत की भाषा सम्बन्धी समस्याएँ ये हैं :—

(१) मातृभाषा (या उसकी स्थानापन्न भाषा) और अंगरेज़ी—इनके सापेक्ष गुरुत्व पर विचार करके, उच्च-शिक्षा और शासन-कार्य में इनके उचित स्थान का निर्णय करना; (२) अखिल-भारत को उपयोगी, जितनी भाषाओं को लेकर संभव हो साधारण वैज्ञानिक और अन्य प्रकार के पारिभाषिक शब्दों का निर्माण और प्रचार; (३) अन्तर्प्रान्तीय राष्ट्रजीवन में हिन्दी (हिन्दुस्तानी) भाषा का स्थान; और (४) साधु या नागरी-हिन्दी बनाम उर्दू, इस विरोध का समाधान; यह विरोध, भाषा और भाषाश्रयी संस्कृति के क्षेत्र में भारत की अन्यतम प्रधान समस्या हिन्दू-मुसलमान विरोध का प्रकाशन-मात्र है, और यह हिन्दी (हिन्दुस्तानी) भाषा के बाहर अन्य भाषाओं के क्षेत्र में भी दो-एक जगह दिखाई पड़ा है। लिपि; और उच्च-कोटि की शब्दावली देशी और संस्कृत होगी, या विदेशी अरबी-फ़ारसी; इन दो प्रश्नों के ऊपर यह विरोध आधारित है।

———

[२] भारत की भिन्न भिन्न नृ-जातियों एवं भाषागोष्ठियों तथा भाषाओं का ऐतिहासिक सिंहावलोकन

जहाँ तक पता चला है, भारत की धरती पर नराकार बन्दर से किसी प्रकार के मानव की उत्पत्ति नहीं हुई। भारत में मानव का आगमन बाहर से हुआ था। लेकिन नाना जातियों के मानव भिन्न-भिन्न काल में भिन्न-भिन्न देशों से भारत में आकर मिलित हुए थे, भारत के अन्दर ही उन्होंने भाषा और संस्कृति में विशेषता प्राप्त की थी, और बाद में भारत से बाहर (विशेष करके पूर्व-अंचल में) फैले थे। कवि के शब्दों में, सुप्राचीन काल से ही भारत में एक महामानव का मेला' लगा हुआ है।

भारत के अधिवासियों में निग्रो Negro या काले (Negrillo निग्रोरूप, निग्रोआकार Negroid या निग्रोटु Negrito) जाति के मनुष्य सब से पुराने हैं। काला रंग, खर्वाकार, सिर पर भेड़े के रोयें की तरह घुँघराले केश, चिपटी नाक और मोटे होठवाली इस निग्रो जाति के मनुष्य अफरीका से प्रागैतिहासिक काल में अरब और ईरान तथा बलोचिस्तान के समुद्री किनारे को पकड़कर भारत में आ पहुँचे थे। ये लोग उषःप्रस्तरयुग eolithic या आदिम प्रस्तर-युग के मनुष्य थे। शिकार कर और कन्दमूल खोदकर खाद्य जुटाना

ही इनकी उपजीविका थी---पशुपालन या कृषि ये नहीं जानते थे। ये भारत के पश्चिम दक्षिण और पूर्वी अंचल में बसे, और स्थलमार्ग से और संभवतः डोंगियों पर चढ़ जलमार्ग से बंगाल और आसाम होते हुए मलय-उपद्वीप और अन्दमन द्वीपपुंज में पहुँचे, एवं और भी पूर्व में द्वीपमय भारत के द्वीपों से होते हुए न्यू-गिनी New Guinea द्वीप में जा पहुँचे, उसके भी पूर्व मेलानेसिया Melanesia द्वीपपुंज तक इनके उपनिवेश बने। भारतवर्ष में निग्रो या निग्रोटु जाति की विशेषता अल्पाधिक परिमाण में दक्षिण-भारत की इरूला Irula, कादिर Kadir, कुरुम्बा Kurumba, पनियन Paniyan, वगैरह कुछ जातियों में दिखाई पड़ती है; और आसाम के नागाओं में भी थोड़े-बहुत निग्रो-रक्त के मिश्रण के चिह्न पाये गये हैं; लेकिन भारतवर्ष में कहीं भी अविमिश्र निग्रोटु जाति के मनुष्य, और उनकी भाषा अब नहीं मिलती। इरूला आदि दक्षिण-भारत की निग्रोटु उपजातियों के लोगों ने अब द्राविड़ भाषा ग्रहण कर ली है, द्राविड़ों से उनका मिश्रण हो गया है। भारत के बाहर मलय प्रायद्वीप की सेमांग Semang जाति का खून निग्रोटु है, लेकिन भाषा मलायी है, Philippine फिलिप्पीन-द्वीपपुंज की आएता Aeta जाति भी ऐसी ही है, केवल एक न्यू गिनि और अन्दमन द्वीपपुंज में अविमिश्र निग्रोटु वर्त्तमान हैं। इन दोनों जगहों में इनकी अपनी भाषा भी अभी बनी हुई है। लेकिन इन निग्रोटु भाषाओं की अच्छी चर्चा या तुलनात्मक विवेचना नहीं हुई है। अन्दमन द्वीपपुंज में संख्या

में ये एक हजार से भी कम हैं। न्यू गिनि के पूर्व मेलानेसिया द्वीपपुंज में निग्रोटु लोग दूसरी जातितों से मिल गये हैं। अनुमान किया जाता है, भारतवर्ष में जंगली और आदिम अवस्था के निग्रोटु लोग अपेक्षाकृत सभ्य परवर्त्ती नवागत जातियों के हाथों विध्वस्त और विलुप्त हो गये, अथवा उनके नौकर या दास होकर रहने लगे और अंशतः उनके साथ मिल गये। सभ्यता नाम की कोई चीज उनमें नहीं थी, उनकी भाषा का भी कोई चिह्न अवशिष्ट नही है। लेकिन संभवतः उनकी भाषा के दो-चार शब्द परवर्त्ती जातियों द्वारा गृहीत होकर आधुनिक काल तक भाषा-धारा मे बहकर अभी भी जीवित या प्रचलित रह सकते हैं। मेरा अनुमान है कि बँगला भाषा का 'बादुड़' (चमगादड़) शब्द मूल में निग्रोटु लोगो की भाषा का अवशेष है; 'बादुड़' ∠ *'बादड़ी' ∠ *'बाद' + 'ड़', स्वार्थे + 'ई', क्षुद्रार्थ का प्रत्यय; इस मूल 'बाद'-शब्द से तुलनीय अन्दमानी 'वात्-द, वोत्, वेत्'; बँगला 'बादुड़, *बादड़ी, *बाद' एक सम्भाव्य प्राकृत *'वद्द' शब्द पर प्रतिष्ठित हैं।

निग्रो या निग्रोटु लोगों के बाद प्रागैतिहासिक काल में एक और जाति के मनुष्य आये, संभवतः पूर्व-भूमध्यसागर के फिलीस्तीन से; इन्हें Proto-Australoid 'प्रोटो-अस्ट्रालायड' अर्थात् आदिम अथवा प्राथमिक दक्षिणाकार—आस्ट्रेलिया के आदिम निवासियों जैसा चेहरे वाला कहा गया है। लेकिन ये उस जाति की आदि अवस्था के थे। इस 'प्राथमिक-दाक्षणाकार' जाति के लोग काले रंग, चिपटी नाक और लम्बे

सिर वाले थे। सारे भारतवर्ष में इनके वंशधर अब भी मिलते हैं, विशेष करके निम्नश्रेणी के लोगों में। ये सारे भारतवर्ष में फैले, और भारत के आदिम अर्ध-सभ्य जगत में ये कुछ उपादान लाये। भारत में इस जाति की मूलभाषा अब अविकृत रूप में जीवित नहीं रही। इनकी भाषा भी क्या थी, उसे निश्चित रूप से जानने का उपाय नहीं। विशेषज्ञों के अनुमान के अनुसार यद्यपि परवर्त्ती काल के विकारग्रस्त या परिवर्त्तित रूप में इनकी भाषा मिल रही है, पर ऐसा अनुमान करना अनुचित नहीं कि आजकल जिस विराट भाषा-गोष्ठो को Austric आस्ट्रिक अर्थात् दक्षिण देशीय या दाक्षिण (लातीन Auster 'आउस्तेर'='दक्षिण प्रान्त' से यह शब्द निकला है) नाम दिया गया है, उसका आदि रूप था प्राथमिक दक्षिणाकार जाति के मनुष्यों की भाषा और भारत में ही इस दक्षिण गोष्ठी की भाषाओं का पूर्ण विकास हुआ। पश्चिमी एशिया में जो सुप्राचीन Mediterranean या भूमध्यसागरीय जाति थी, भारत में आये Proto-Australoid प्राथमिक दक्षिणाकार (अथवा Austric दक्षिण) जातीय लोग उसी की एक अति प्राचीन शाखा है; इन्होंने प्रागैतिहासिक काल में मेसोपोतामिया होकर भारत में प्रवेश किया। भारतवर्ष में ही इनकी आदिम कृष्टि या सभ्यता और संस्कृति ने विशिष्टता प्राप्त की। किन्तु भारत में इनकी सभ्यता की उन्नति के पहले ही जब ये लोग आदिम अवस्था में थे, तभी इनका कोई दल सिंहल में जा पहुँचा। सिंहल में इनके उत्तर-पुरुष अब Vedda व्याद्दा या

'व्याध' नाम से परिचित वन्य-जाति के तौर पर विद्यमान हैं। इसके अलावा, बर्मा और मलय-प्रायद्वीप होते हुए इनके कुछ दल जाकर आस्ट्रेलिया में रहने लगे, आस्ट्रेलिया के आदिम वासी इन्हीं के वंशधर हैं। बाद में भारतवर्ष से प्रागैतिहासिक युग में इनकी नाना शाखाएँ इन्दोचीन (बर्मा, स्याम, कम्बोज आदि देश) मलय-प्रायद्वीप, द्वीपमय-भारत और उसके पूर्व काले-द्वीपपुंज और बहुद्वीपपुंज में फैल गईं। तब इनकी सभ्यता अपेक्षाकृत अग्रसर हो गई थी। मेसोपोतामिया की सभ्यता की नींव प्रागैतिहासिक काल में जिनके हाथों पड़ी थी, उसी Sumerian सुमेरीय जाति के लोगों की भाषा से भारत की Austric या दक्षिण भाषा का सादृश्य किसी किसी को मिला है। सचमुच ही अगर यह सादृश्य है तो इससे पश्चिम जगत से भारत के दक्षिणाकार या दक्षिण जाति के लोगों और उनकी भाषा का सम्बन्ध समर्थित होता है।

भारत के बाहर इस दक्षिण जाति के लोग, निग्रोटु और मंगोल जातीय लोगों से मिश्रित हो गये, और इस मिश्रण के फलस्वरूप दक्षिणपूर्व एशिया तथा द्वीपावली की भिन्न-भिन्न जातियाँ और उनकी भाषाएँ बनीं। बर्मा की Mon मोन या Talaing तालैंग, Paloung पालोङ्ङ् तथा Wa वा, स्याम की Mon मोन, कम्बोज की Khmer ख्मेर, फ्रांसीसी हिन्दचीन की Bahnar बाह्नार, Steing स्तिएङ् आदि कई भाषाएँ; मलायी भाषा तथा Indonesia अर्थात् द्वीपमय-भारत की तत्-सम्बन्धित, यवद्वीपीय, बलिद्वीपीय, मदुरी, सुन्दा, सेलेबेस

आदि भाषाएँ, फिलिप्पीन की Tagalog तागालोग्, Visaya विसाया आदि भाषाएँ, और सुदूर मदागास्कर द्वीप की Malagasi मालागासी भाषा; Melanesia मेलानेशिया या काले द्वीपपुंज के Fiji फिजी या Viti विति तथा दूसरे द्वीपों की भाषाएँ; और Polynesia पोलिनेशिया या बहुद्वीप-पुंज की Samoa समोआ, Tahiti ताहिति Tonga तोङा Tuamotu तुआमोतु, Marquesas मार्केसास्, Hawaii हवाई आदि द्वीपसमूहों की भाषाएँ और New Zealand न्यू-जीलैण्ड की मावरी जाति की भाषा; ये सभी Austric आस्ट्रिक या दक्षिण भाषागोष्ठी के अन्तर्गत हैं। भारतवर्ष में दक्षिण-भाषियों ने गंगा और सिन्धु के काँठों पर अधिकार स्थापित किया था, वे मध्य-भारत के जंगलमय पहाड़ी इलाके में भी फैले, दक्षिण भारत में त्रावणकोर तक पहुँचे; और उत्तर में हिमालय अंचल में भी बसे। संभवतः दक्षिण-जातीय लोगों ने ही भारत मे 'झुम' कृषि (लकड़ी की तेज नोक वाली लग्गी या डंडे से मिट्टी खोद उसमें बीज बोकर खेती करने की प्रथा) चलाई। वे धान की खेती करते थे; केला और नारियल, पान और सुपारी, अदरख और हलदी, लौकी और बैंगन वगैरह तरकारियों और मुर्गी पालने का प्रचलन भारत में इन्होंने ही किया। ये गोपालन नहीं जानते थे लेकिन संभवतः इन्होंने पहले-पहल हाथी को पालतू बनाकर मनुष्य के काम में लगाया था। कपास के सूत से कपड़ा बुनना भी इन्हीं की देन मालूम पड़ती है। भारत की ग्रामाश्रयी सभ्यता के कुछ मौलिक या प्रधान उपादान इन्हीं से मिले हैं। सभी

२

दक्षिण उपजातियाँ या जनसमूह सभ्यता के एक ही स्तर में नहीं पहुँच पाये। नदियों के काँठों में इनकी जितनी उन्नति हुई, अरण्यसंकुल पार्वत्य अंचलों में उतनी नहीं हो सकी। संभवतः परवर्त्ती काल में द्राविड़ और आर्य आक्रमण-कारियों के आगमन से इनकी बहुत-सी उपजातियाँ नदियों के उपजाऊ काँठों को छोड़कर मध्य भारत के पहाड़ों और जंगलों में आश्रय लेने के लिए बाध्य हुईं, और वहाँ कृषि की जगह मृगया इनकी प्रधान उपजीविका बनी। साथ ही साथ इनकी सभ्यता में भी अवनति हुई। जो कुछ भी हो, नदियों के काँठों में ये प्रायः अपनी प्राचीन दक्षिण भाषा को छोड़कर प्रबल विजेता आर्यों की भाषा ग्रहण करती गईं, और इस तरह ईसा के लगभग एक हजार वर्ष पूर्व ये आर्य-भाषी हो गईं। इनकी पड़ोसी उत्तर-भारत की द्राविड़-भाषी जातियों की भी यही दशा हुई। दक्षिण-भाषी जातियों के वंशधर अब पंजाब से आसाम तक सारे उत्तर भारत की जनता में आत्म-गोपन करके, आर्य-भाषी हिन्दू या मुसलमान के रूप में विद्यमान हैं। इनकी मूल भाषा के शब्दों और कुछ खास विशेषताओं ने इनके द्वारा गृहीत आर्यभाषा में भी प्रवेश किया है। इस प्रकार आर्यभाषा भारत में इनके मुँह से नया रास्ता पकड़कर विकसित हुई है।

प्राचीन भारत में दक्षिण-जातीय जनगण, आर्यों द्वारा निषाद कहे जाते थे।

अब दक्षिण या निषाद-गोष्ठी की कुछ भाषाएँ अप्रसिद्ध

और अज्ञात रूप में मध्य भारत और पूर्व-भारत के किसी किसी स्थान में किसी तरह बची हुई हैं। भारत की समग्र जनता की १·३ प्रतिशत इसी गोष्ठी की भाषा बोलती है, वह ५० लाख से अधिक नहीं होगी। भारतीय दक्षिण-भाषाएँ तीन श्रेणियों में आती हैं; [१] Kol कोल या Munda मुण्डा श्रेणी; संथाली इसी में आती है। (२५ लाख से अधिक लोग[1] संथाली बोलते हैं। भारत की आदिम भाषाओं में संथाली सबसे अधिक लोगों की भाषा है। बिहार प्रान्त में—विशेष करके संथाल परगना में—उड़ीसा, बंगाल में—विशेष करके पश्चिम और उत्तर बंगाल एवं आसाम इन सभी स्थानों में संथालों का निवास है; इनकी आदि भूमि बिहार में है; उत्तर-बंग और आसाम में मजदूरी करने के लिए ये झुण्ड के झुण्ड जाकर बस रहे हैं); मुंडारी (६½ लाख)—राँची इसका केन्द्र है; हो (४½ लाख); एतद्‌भिन्न भूमिज (१ लाख १३ हजार) आदि कुछ भाषाएँ. इन

१—इस पुस्तक में भिन्न भिन्न भाषा भाषियों की जनसंख्या साधारणतः १९३१ की जन-गणना के अनुसार दी गई है; Linguistic Survey of India में १९२१ की जन-गणना के आधार पर हिसाब करके जो जनसंख्या निर्धारित की गई है, कहीं कहीं उसका अनुसरण किया गया है—ऐसे क्षेत्र में संख्या के पहले *चिह्न दिया गया है। बर्मा को छोड़कर १९३१ में भारतवर्ष की जनसंख्या ३३ करोड़ ८० लाख से ऊपर थी, और १९४१ में करीब ३८ करोड़ ९० लाख थी।

तीनों से घनिष्ठरूप से सम्बन्धित हैं। इसके अलावा खड़िया (१ लाख ८० हजार), कोरकु (१ लाख ६० हजार), जुयाङ् (१५ हजार), शबर या शोरा (१ लाख १६ हजार) और गदब (४४ हजार); [२] Khasi खासी या खसिया आसाम प्रान्त के खसिया पहाड़ में प्रचलित (२ लाख ३४ हजार), और [३] Nicobarese निकोबारी (लगभग १० हजार) ।

भारत की दक्षिण-गोष्ठी की भाषाओं की साहित्यिक चर्चा कभी नहीं हुई; उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध में ही यूरोपीय ईसाई धर्म प्रचारकों के प्रयत्न से इन भाषाओं का अनुशीलन आरम्भ हुआ, इनमें ईसाई शास्त्र का अनुवाद करके और इनमें प्रचलित पुराण-कहानियों तथा लोक-कथाओं और गीत आदि मौखिक साहित्य का संग्रह करके, इन भाषाओं के साहित्यिक प्रकाश की चेष्टा की गई । कोल भाषाओं में, विशेष करके संथाली में, कुछ सुन्दर पुराण-कथाएँ और रूप-कथाएँ मिली हैं—दुमका के स्कान्दिनेवीय मिशनरियों के प्रयत्न से यूरोप (नारवे और डेनमार्क) से इनका रोमन अक्षरों मे मूल और अंगरेजी अनुवाद प्रकाशित हुआ है; और संथाली, मुंडारी तथा हो भाषा में (विशेष करके मुंडारी में) अति मनोरम छोटी छोटी गीति-कविताएँ मिलती हैं। उनका कुछ कुछ संग्रह, अनुवाद और विवेचन हुआ है। कोलभाषीगण (अर्थात् उनमें दो चार शिक्षित व्यक्ति—अधिकांश में ये ईसाई हैं) अब धीरे-धीरे

अपनी भाषा और संस्कृति के बारे में कुछ सजग हो रहे हैं। कलकत्ता विश्वविद्यालय ने बहुत दिनों से बी० ए० परीक्षा तक खसिया भाषा को परीक्षार्थियों की अन्यतम मातृ-भाषा के तौर पर पाठ्य-क्रम में स्थान दिया है, और हाल ही में संथाली को मैट्रिकुलेशन परीक्षा में यह मर्यादा दी गई है। इससे इन भाषाओं के पठन-पाठन और विवेचन का रास्ता खुला है—लेकिन कोल-भाषियों, और आंशिक रूप से खसिया लोगों को, बँगला, बिहारी या हिन्दी, उड़िया अथवा आसामी, इन आर्य-भाषाओं में एक को जानना ही पड़ता है। उनकी निवास-भूमि में, सभ्यता तथा बुद्धि में उनसे बहुत अग्रसर आर्यभाषी लोगों का आगमन और निवास क्रमशः बढ़ता ही जा रहा है। वे अपनी प्राचीन भाषा और प्राचीन जीवनयात्रा को लेकर अब एकान्त में सदानन्द और निश्चिन्त नहीं रह पा रहे हैं। कालधर्मानुसार बाहर से निपटारा करने के लिए उन्हें बाध्य होना पड़ रहा है। अतएव उन्हें सुसभ्य पड़ोसियों द्वारा काम में लाई जानेवाली आर्यभाषाएँ सीखनी पड़ रही हैं। इसके फलस्वरूप वे धीरे धीरे आर्यभाषी होते जा रहे हैं। प्रारम्भ में वे मातृभाषा के अलावा बँगला या बिहारी या उड़िया जानने के लिए बाध्य हो रहे हैं, क्रमशः उनके मुँह में कोल मातृभाषा अब अपनी विशुद्धता की रक्षा नहीं कर पा रही है; और वे भी धीरे धीरे आर्यभाषी बनते जा रहे हैं। इस प्रकार दक्षिण-भाषियों का जो आर्यीकरण आज से साढ़े-तीन या तीन हजार वर्ष पूर्व इस देश में आर्यभाषा के

आगमन के साथ ही शुरू हुआ था, वह अब तक चल रहा है, और उसका अंत होगा कोल-भाषियों को आर्यभाषा ग्रहण कराकर; और दो-तीन सौ वर्षों में, या इससे भी कम समय में, कोल तथा दूसरी दक्षिण-भाषाओं को लुप्त करके, तब इस आर्यीकरण-प्रक्रिया का अंत होगा।

दक्षिणभाषियों के बाद हमें भारत में द्राविड़-भाषी मिलते हैं। ये ई० पू० ३५०० के पहले ही इस देश में आ पहुँचे थे। अनुमान किया जाता है, द्राविड़-भाषियों ने दो भिन्न-भिन्न जातियों को मिलाकर एक मिश्र या मिलित जन-गण के रूप में भारत में प्रवेश किया था। इनमें एक थी सुसभ्य लम्बे-सिर (Dolicocephalic) Mediterranean या भूमध्यसागरीय जाति, इनकी निवास भूमि थी दक्षिण-पूर्व यूरोप, पश्चिम-एशिया और उत्तर-अफरीका में, विशेष करके Aegean आयनीय या ईजियन सागर के आस पास वाले देशों में और उस सागर के द्वीपों में; और दूसरी थी पश्चिम एशिया-माइनर (क्षुद्र एशिया) की चिपटे-सिरवाली (Brychocephalic) Armenoid 'आर्मेनायड' अर्थात् 'आर्मन-आकृतिक' जाति। भूमध्यसागरीय जाति ही प्रवल थी; प्राचीन ग्रीस के Indo-European भारत-यूरोपीय अर्थात् आदिम आर्य-जाति-सम्भूत ग्रीकों के आगमन के पूर्व, इस भूमध्य-सागरीय ईजियन जाति ने ही उस अंचल में एक विराट् सभ्यता का निर्माण किया था। भारतवर्ष में आकर इन्होंने और इनके अनुवर्त्ती समभाषिक आर्मेनायडों ने मिलकर, दक्षिण-पंजाब और सिन्धु प्रदेश की

विराट नागरिक सभ्यता प्रतिष्ठित की, मोहन-जो-दड़ो और हड़प्पा में इस सभ्यता का ध्वंसावशेष अब हमें विस्मित कर देता है। इस सभ्यता का गौरवमय युग आनुमानिक ३२५०-२७५० ई० पू० था। मोहन-जो-दड़ो और हड़प्पा की सभ्यताओं की स्रष्टा भूमध्यसागरीय जाति के लोग भाषा में द्राविड़ थे। यह अवश्य प्रमाणित सत्य नहीं है, पर इसके पक्ष में कई प्रबल तर्क हैं। ये द्राविड़-भाषीगण पश्चिम और दक्षिण-भारत में फैले; और इन्होंने गंगा नदी के काँठे में बंगाल तक अपना विस्तार किया। उत्तर-भारत में प्रारम्भ से ही दक्षिण या निषाद लोगों से इनका संघर्ष तथा मिलन हुआ। बाद में आर्यों से भी इसी प्रकार का संघर्ष और सम्मिलन हुआ था। भारत की प्राचीन सभ्यता को, हिन्दू सभ्यता को, कुछ मौलिक उपादान अनार्य निषाद तथा द्राविड़ जगत् से मिले। द्राविड़-भाषियों की भिन्न-भिन्न शाखाओं के अपने अपने स्वतंत्रजन या गणवाचक कुछ नाम प्रचलित थे; जैसे 'अन्ध्र' 'द्रमिक्ष या द्रमिड (द्रविड़), कर्णाट, केरल या चेर' आदि। आर्य-भाषीगण धीरे-धीरे इन नामों से परिचित हुए। आधुनिक यूरोपीय पंडितों ने 'द्राविड़' शब्द को व्यापक अर्थ में ग्रहण किया है। आर्य-भाषीगण भारत में आने के पहले ईरान में बसे हुए द्राविड़ जाति के लोगों से परिचित हुए थे, ऐसा अनुमान किया जाता है। आर्य-भाषी द्राविड़ों को दास तथा दस्यु इन दो नामों से पुकारते थे। जातिवाचक अर्थ से इन दोनों शब्दों का अर्थ बाद में आर्यभाषा में क्रम से क्रीतदास

या भृत्य और 'तस्कर' रूप में अवनमित हुआ। आर्यों के आगमन के फलस्वरूप आर्यभाषा उत्तर-भारत में फैली; दक्षिण या निषाद तथा द्राविड़ दोनों ने आर्यभाषा ग्रहण की, और धीरे धीरे इन तीनों जातियों के मनुष्य मिलकर एक नवीन जाति में परिणत हुए—उत्तर-भारत की आर्य-भाषी हिन्दू जाति। यह बात ईसा से लगभग १००० वर्ष पूर्व से ही प्रबल रूप से होने लगी, और इसी समय, बुद्ध के कुछ पहले ही, इस मिश्र हिन्दू जाति और संस्कृति का ढाँचा मजबूत हो गया। उत्तर-भारत में आर्यों के आगमन के पहले से ही आमने सामने दो भिन्न-भिन्न प्रकार की भाषा-गोष्ठियों—दक्षिण या निषाद तथा द्राविड़—के होने के कारण, आर्यभाषा के प्रसार में सुविधा हुई थी। निषाद और द्राविड़ दोनों ही के लिए आर्यभाषा ग्रहण करने में वैसी बाधा नहीं पहुँची। लेकिन उत्तर-काल में दक्षिण-भारत में जहाँ द्राविड़-भाषीगण दूसरी जाति या दूसरी भाषा के लोगों से मिश्रित न होकर, सारे देश भर में फैले हुए थे, वहाँ आर्यभाषा को विशेष सुविधा नहीं हुई। वर्त्तमान काल में, उत्तर-भारत तथा मध्य-भारत में, द्राविड़-भाषा खंडित, छिन्न और विक्षिप्त रूप में कहीं कहीं बाकी है; लेकिन दक्षिण-भारत में द्राविड़-भाषा का अखंड राज्य है। इस समय भारतवर्ष में प्राय ७ करोड़ १० लाख व्यक्ति भिन्न-भिन्न द्राविड़ भाषाओं का व्यवहार करते हैं—समग्र भारतीय जनता में २० प्रतिशत द्राविड़-भाषी हैं। चार मुख्य और साहित्य-सम्पन्न द्राविड़-भाषाएँ मौजूद हैं—

(१) तेलुगु या आन्ध्र (२ करोड़ ६० लाख से ऊपर)

(२) **कानड़ी** या **कर्णाट** (१ करोड़ १० लाख से ऊपर)

(३) **तमिळ** या **द्रमिड** (**द्राविड़**) (भारत में २ करोड़, सिंहल में २० लाख) और (४) **मलयालम** या **केरल**—इसके अन्तर्गत **लाक्षाद्वीपीय भाषा** (९० लाख से ऊपर)। इन चार साहित्यसंपन्न सुसंस्कृत द्राविड़ भाषाओं के अलावा आदिम उपजातियों में प्रचलित और भी कुछ द्राविड़ भाषाएँ है, जैसे—**तुलु** (१ लाख ५२ हजार), **कोडगु** या **कुर्ग** प्रदेश की भाषा (४५,०००), **तोदा** (केवल ६००); **गोंड़** या **गोंड**-भाषा (१० लाख ८६ हजार से ऊपर मध्य-प्रदेश, मद्रास-प्रदेश और हैदराबाद में), **कन्ध** या **कुइ** (५ लाख ८६ हजार उड़ीसा में), **कुँड़ूख** या **ओराँव** (१० लाख ३८ हजार बिहार, उड़ीसा और आसाम में), तथा **मालतो** (७१,००० राजमहल की पहाड़ियों में); इसके अलावा बलोचिस्तान में है, (Brahui) **ब्राहुई** भाषा (२ लाख ७ हजार से ऊपर) —अति प्राचीन काल में पश्चिम भारत में—सिन्धु-प्रदेश और उसके निकट वाले बलोचिस्तान में—जो विशाल द्राविड़-भाषा फैली हुई थी, यह ब्राहुई भाषा उसी का भग्नावशेष है। इन तमाम असंस्कृत तथा साहित्य-विहीन द्राविड़ भाषाओं को जो लोग बोलते हैं, उन्हें एक न एक सुसभ्य या मुख्य भाषा सीखनी ही पड़ती है। कहीं तमिळ या कानड़ी या मलयालम, कहीं तेलुगु,

कहीं हिन्दी अथवा मराठी, उड़िया अथवा बिहारी; और बलोचिस्तान में द्राविड़ ब्राहुई-भाषियों को आर्यभाषा 'ईरानीय' बलोची तथा फारसी और भारतीय सिन्धी तथा हिन्दुस्तानी सीखनी पड़ती है। इसलिए, तमिळ. मलयालम, कानड़ी, तथा तेलुगु, इन चार साहित्य-समृद्धिमय मुख्य द्राविड़-भाषाओं को ही लेना पड़ता है—बाकी व्यावहारिक जीवन के लेखे में नहीं आतीं ; यद्यपि ओरॉव तथा गोंड़ भाषा में रचित उल्लेखनीय ग्राम-गीतों और कविताओं का संग्रह किया गया है।

तमिळ-भाषा को साहित्य-सम्पदा विशेष उल्लेखनीय है। तमिळ के प्राचीनतम काव्यग्रंथ समूह के मूल रूप ईसा के जन्म के बाद की पहली दो तीन शताब्दियों तक पहुँच जाते हैं। यह साहित्य 'चङ्कम्' साहित्य अर्थात् 'संघ' या प्राचीन तमिळ-साहित्य-संघ या परिषद् द्वारा अनुमोदित साहित्य के नाम से परिचित है। प्राचीन तमिळ एक विशेष प्रौढ़, स्वतंत्र भाषा है, यह संस्कृत के प्रभाव से बहुत कुछ मुक्त है। प्रेम और युद्ध का अवलम्बन करके रचित इसके काव्यग्रन्थों में आदि द्राविड़ सभ्यता का विशिष्ट और अति मनोहर प्रकाश देखा जाता है। परवर्त्तीकाल में शैव सिद्ध और वैष्णव 'अळवार' अर्थात् भक्तों द्वारा रचित तमिळ आध्यात्मिक भाव के पद, भारत की धर्म-चिन्ता के इतिहास में गौरवमय स्थान अधिकार किये हुए हैं। प्राचीन तमिळ को 'चेन्-तमिऴ्' कहते है, इसके बदले ईसा की तेरहवीं शताब्दी के बाद 'कोडुन्-दमिऴ्' या आधु-

निक तमिळ आती है। प्रसार में, स्वतंत्रता में और विचित्रता मे, तमिळ साहित्य भारतवर्ष में संस्कृत साहित्य के बाद ही उल्लेख योग्य है। कानड़ी भाषा का साहित्य वयःक्रम या प्राचीनता में प्रायः तमिळ के ही समकक्ष है। बहुत से प्राचीन अनुशासन ईसा की सातवीं शताब्दी से कानड़ी भाषा में लिखे गये हैं। प्राचीन कानड़ी भाषा ('पले-कन्नड' या 'हले-कन्नड') बदलकर आधुनिक कानड़ी ('पोस-कन्नड' या 'होस-गन्नड') में जा पहुँची है। संस्कृत का प्रभाव अति प्राचीन-काल से ही कानड़ी भाषा पर अत्यधिक पड़ा है। तेलुगु साहित्य की प्राचीनतम पुस्तक नन्नय्य भट्ट का 'महाभारत' १००० ई० के लगभग रचित हुआ; तेलुगु में साहित्य-चेष्टा अवश्य इसके पहले भी थी। तेलुगु पर संस्कृत का प्रभाव प्राचीन काल से ही यथेष्ट मात्रा में देखा जाता है, यद्यपि कभी-कभी तेलुगु पण्डितों ने 'अच्च-तेलुगु' अर्थात् संस्कृत शब्द-विहीन विशुद्ध तेलुगु में रचना करने की चेष्टा की है। साधु अर्थात् प्राचीन व्याकरण अनुमोदित तेलुगु और आधुनिक प्रचलित तेलुगु इन दोनों ही का अब साहित्य में व्यवहार होता है.—कौन सी आजकल के लिए उपयोगी सर्वजन-गृहीत भाषा होगी, इसे लेकर इस समय तेलुगु लेखकों में मतभेद दिखाई पड़ता है। मलयालम प्राचीन तमिळ से निकली है, इसे तमिळ की छोटी बहिन कहा जाता है। पन्द्रहवीं शताब्दी ईसवी से इसका तमिळ से स्वतंत्र साहित्य-जीवन आरम्भ हुआ। मलयालम शायद कानड़ी से भी संस्कृत से अधिक प्रभावित है । इन सुसभ्य द्राविड़ भाषाओं

में एकमात्र तमिळ ही प्राचीन या मूल द्राविड़ भाषा की प्रकृति—उसके धातु और शब्द आदि—का बहुत कुछ संरक्षण करती आई है; एक भी संस्कृत या आर्य शब्द का व्यवहार न करके केवल शुद्ध तमिळ में ही वाक्यों की रचना की जा सकती है। लेकिन फिर भी, तमिळ पर संस्कृत का प्रभाव कुछ कम नहीं है। चारों ही भाषाएँ आवश्यकतानुसार संस्कृत शब्दों का व्यवहार करती हैं; आधुनिक भाव के संस्कृत शब्द, तमिळ मलयालम कानड़ी और तेलुगु प्रायः ज्यों के त्यों ग्रहण करती हैं, और बनाती हैं। उत्तर-भारत की आर्य-भाषाएँ तथा दक्षिण-भारत की ये चार द्राविड़ भाषाएँ, मूलतः सम्पूर्णरूप से अलग भाषागोष्ठी की भाषा होने पर भी. इनमें साधारण संस्कृत शब्दों के जो उपादान वर्त्तमान हैं, वह इन दो गोष्ठियों की भाषाओं के लिए अत्यन्त कार्यकर मिलन-सूत्र स्वरूप रहे हैं। साधु या साहित्यिक तेलुगु, कानड़ी, मलयालम तथा तमिळ पढ़ लेने पर, इन भाषाओं में व्यवहृत संस्कृत शब्दों के कारण उत्तर-भारत के हिन्दी बँगला गुजराती तथा मराठी भाषी इनका आशय बहुत कुछ समझ सकेंगे। केवल, संस्कृत शब्दों से जिनका परिचय नहीं है ऐसे अरबी-फारसी-शब्द-बहुल उर्दू-भाषी नहीं समझ सकेंगे।

Sino Tibetan या Tibeto-Chinese अर्थात् भोट-चीन-भाषी Mongol या Mongoloid मंगोल-जातीय मंगोलाकार मनुष्य भारतवर्ष में आर्यों के आगमन के बाद

आये थे; अब उनकी बात लें। इस मंगोल-जाति की आदि निवासभूमि उत्तर-पश्चिम चीन में थी। इनकी एक शाखा उत्तर-चीन में बस गई। वहाँ इन्होंने Hwang-Ho होआङ्-हो नदी के तीर ईसा के २००० वर्ष पूर्व ही चीनी सभ्यता का नींव डाली। बाद मे ई० पू० पहले सहस्रक में यह सभ्यता परिपुष्ट हुई; इसकी लिपि, साहित्य, दर्शन और शिल्पकला सुप्रतिष्ठित हो गईं। उसके बाद ईसा की पहली सहस्राब्दी में बौद्धधर्म के द्वारा भारतवर्ष से चीन का जो आध्यात्मिक और सांस्कृतिक सम्बन्ध हुआ, उसके फल-स्वरूप चीनी सभ्यता ने पूर्णता प्राप्त की। भोट-चीन जाति की दूसरी शाखा Dai दै या Thai थाइ जाति दक्षिण में स्याम देश में गई, और भारतीय सभ्यता द्वारा अनुप्राणित स्थानीय अस्त्रिक जाति के मोन तथा ख्मेर लोगों के संस्पर्श में आकर, भारतीय धर्म, संस्कृति, लिपि आदि को अपना कर १००० ई० के बाद स्यामी जाति में परिणत हुई। उसी प्रकार बर्मा में Mran-ma म्रन्-मा या Byamma ब्यम्मा नामक एक और शाखा मोन लोगों से भारतीय धर्म और सभ्यता ग्रहण कर, बर्मी जाति बन गई। इस भोट-चीन जाति की Bod बोद् या भोट शाखा ई० पू० पहली सहस्राब्दी के मध्यभाग में तिब्बत में आ पहुँची; और इनसे सम्बन्धित कई दूसरी शाखाएँ या उपजातियाँ आसाम तथा उत्तर-पूर्व बंगाल और नेपाल में आ पहुँचीं। भोट लोग भी हिमालय पार कर हिमालय के दक्षिण में भारत

की सामा पर आ पहुँचे। तिब्बत के भोटों ने ईसा की सातवीं शताब्दी में बौद्ध धर्म और भारतीय लिपि ग्रहण की, भारतीय बौद्ध साहित्य के अनुवाद को आधार बनाकर भोट भाषा में साहित्य-सृजन का आरम्भ हुआ। लेकिन भारतवर्ष में आई और बसी दूसरी भोट-चीन उपजातियाँ सभ्यता में नितान्त पिछड़ी हुई थीं। भारत की सभ्यता के निर्माण में इनकी देन उतनी उल्लेखनीय नहीं थी।

तिब्बत में तिब्बतियों के आगमन के बहुत पहले मंगोल-जातीय लोग हिमालय को पार कर और आसाम में हिमालय के साथ साथ उत्तर-पूर्व भारत में आये, पश्चिम में वे कुल्लू लाहुल तक फैले। यजुर्वेद में इनका प्रथम उल्लेख मिलता है—आर्य-भाषीगण इन्हें **किरात** के नाम से जानते थे। मंगोल या किरात जातीय लोगों ने कम से कम १००० ई० पू० में भारत में प्रवेश किया। नेपाल, संभवतः उत्तर बिहार, उत्तर बंग, पूर्व बंग और आसाम किरात जाति के प्रसार और उपनिवेश के क्षेत्र बने। स्थानीय निषाद या दक्षिण और द्राविड़ तथा बाद में आर्यभाषी लोगों के साथ इनका मिश्रण हुआ। लेकिन पहाड़ी अंचल में छोटी-छोटी भोट-चीन उपजातियों ने अपनी भाषाओं और प्राचीन बर्बर या अर्ध-बर्बर जीवन को लेकर युगों बिता दिये हैं। फिर भी नेपाल में, उत्तर बिहार तथा उत्तर बंग में, आसाम और पूर्व बंग में हिन्दू सभ्यता और हिन्दू इतिहास के विकास में किरात या मंगोलाकार जाति के लोगों ने उल्लेखनीय भाग ग्रहण किया।

नेपाल की Newari नेवारी जाति बौद्ध धर्म का आश्रय लेकर बंगाल और बिहार के लोगों के साहचर्य से प्रायः हजार वर्ष पूर्व से उच्च सभ्यता की अधिकारिणी हुई है; और पिछले दो-ढाई सौ वर्षों के अन्दर मणिपुर की Meithei मेइतेइ या मणिपुरी जाति ने भी गौड़ीय वैष्णव धर्म के प्रभाव से एक उल्लेखनीय संस्कृति का निर्माण किया है, थोड़ा-बहुत साहित्य भी सृजन कर रही है। आसाम, बंगाल और नेपाल के मैदान के भोट-चीन-भाषीगण धीरे-धीरे आर्यभाषी बनते जा रहे हैं। बंगाल और आसाम में Bodo बड या बोडो जाति एक समय दक्षिण त्रिपुरा उत्तर-पूर्व-बंगाल और पश्चिम-आसाम तक फैली हुई थी। इनकी नाना शाखाएँ धीरे-धीरे बँगला तथा आसामी-भाषी बन रही हैं, यद्यपि गारो लोग (२ लाख ३० हजार) और डिमा-सा या काछाड़ी लोग तथा बोडो श्रेणी की कुछ जातियाँ अपने बोडो नाम और भाषा की रक्षा की चेष्टा कर रही हैं। गारो, मेइतेइ या मणिपुरी (३ लाख ९२ हजार), और लुशेइ (६० हजार) कलकत्ता विश्वविद्यालय द्वारा परीक्षार्थियों के लिए मातृभाषा के रूप में स्वीकृत हुई हैं; नागा के सम्बन्ध में इसी प्रकार की चेष्टा का आरम्भ दिखाई पड़ रहा है। लेकिन इन भाषाओं की जीवनशक्ति अधिक दिनों के लिए है ऐसा नहीं लगता; भारत के वृहत्तर जीवन में भाग लेने के लिए केवल इन साहित्यहीन पहाड़ी भाषाओं से काम नहीं चलेगा।

भोट-चीनी-भाषियों को बँगला आसामी अथवा नेपाली सीखनी ही पड़ेगी, और पड़ रही है। अवश्य भोट या तिब्बती और बर्मी आदि कई लाख लोगों की समृद्ध साहित्यिक भाषा की बात अलग है। भारत के अधिवासियों में गिनती में केवल ४० लाख लोग— ·८५ प्रतिशत—भोट-चीन गोष्ठी की शताधिक भाषाओं तथा उपभाषाओं का व्यवहार करते हैं। आर्यभाषा बँगला आसामी तथा नेपाली के प्रसार के साथ-साथ इनका विलोप अवश्यम्भावी ही प्रतीत होता है। (भोट-चीन या किरात श्रेणी की भाषाओं का वर्गीकरण आगे दिया गया है।)

अंत में भारत की विशाल आर्य-गोष्ठी की भाषाओं पर विचार करना होगा। भारत की आर्यभाषाएँ—वैदिक संस्कृत से लेकर आज की आर्यभाषा तक—सभी पश्चिम जगत् के साथ, अर्थात् ईरान और यूरोप के साथ, हमारी प्रधान और विशेष मूल्यवान आध्यात्मिक और आधिमानसिक मिलन-सूत्र हैं। आदिम Indo European इन्दो-यूरोपीय या भारत-यूरोपीय जाति—भारत में आये आर्यगण जिस जाति की एक शाखा थे, उसी जाति—की संस्कृति का ईसा से लगभग ३००० वर्ष पहले यूराल पहाड़ के दक्षिण रूस के अन्तर्गत यूरोप और एशिया भर में विद्यमान विशाल समतल भूमि में, निर्माण हुआ था। यहीं उनकी भाषा (वैदिक संस्कृत, प्राचीन ईरानी, प्राचीन हित्ती, यवन या प्राचीन ग्रीक, रोमक या लातीन और दूसरी इतालीय, गाथिक तथा दूसरी प्राचीन जरमनिक

आयरलैंड की प्राचीन भाषा, प्राचीन स्लाव, प्राचीन अर्मनी, कूची या तुखारी इत्यादि)—प्राचीन आर्य-गोष्ठी के भाषासमूह की आदि जननी—ने अपनी विशिष्टता प्राप्त की। आदि इन्दो-यूरोपीय जाति की विभिन्न शाखाएँ पश्चिम, दक्षिण और दक्षिण-पूर्व में फैल गईं; और इनकी 'आर्य' शाखा ईसा से लगभग दो-सवा-दो हजार वर्ष पहले उत्तर-मेसोपोतामिया में आकर बस गई। यहाँ ईसा से लगभग डेढ़-दो-हजार वर्ष पूर्व स्थानीय राज्यों में आर्यों ने भी अपनी जगह बना ली। Kashshi काशि नामक इनके एक दल ने ई० पू० १७४४ में बाबिलन शहर पर अधिकार कर उस प्रदेश में राज्य करना आरम्भ कर दिया; Mitanni मितान्नी तथा Harri हार्रि या आर्य नाम के दो और दलों ने दो स्वतंत्र (अलग) राज्य स्थापित किये। आगे चलकर इनके कुछ जन या उपजातियाँ पहले ईरान आईं, तथा ईरान से भारत में पंजाब में प्रविष्ट हुईं। ईरान में जो रह गये उनकी भाषा, और जो भारतवर्ष में आये उनकी भाषा प्रायः तुल्य थी। एक भाषा में कही हुई बात को दूसरी भाषा के बोलने वाले समझ लेते थे। एक ओर भारत की वैदिक संस्कृत और दूसरी ओर ईरान की अवेस्ता की भाषा का शिलालेख की पुरानी फारसी से इतना अधिक सादृश्य है कि इन दोनों देशों की प्राचीन आर्यभाषाओं को एक ही भाषा की विभाषा (Dialect) या शैली कहा जा सकता है।

भारत में जो आर्यभाषा-भाषी आये थे, वे शारीरिक गठन की दृष्टि से एक ही जाति के थे, ऐसा नहीं प्रतीत होता।

अनुमान किया जाता है, इनमें दो भिन्न-भिन्न जातियों के भिन्न-भिन्न प्रकार की शारीरिक गठन वाले जन-समूह थे; एक Nordic 'नार्डिक' अर्थात् उत्तरदेश के मानव, ये दीर्घकाय, सफेद या गौरवर्ण, हिरण्यकेश, नीलचक्षु, सरल नासिक और लम्बे सिर वाले थे—बहुतों के मतानुसार ये ही विशुद्ध इन्दो-यूरोपीय या मौलिक आर्य हैं; और दूसरी जाति के लोग Alpine 'आल्प-पर्वतीय' या मध्य-यूरोपीय जाति के बताये जाते हैं। ये अपेक्षाकृत लघु-काय, पिंगल केश या कृष्ण केश, और चिपटे सिर वाले थे। भारत में आई हुई इस आल्पीय श्रेणी की जाति मूलतः आर्यभाषी था या नहीं, इस विषय में सभी एकमत नहीं हैं। लेकिन भारत में कहीं-कहीं, जैसे गुजरात और बंगाल में, आर्यभाषी लोग इस चिपटे सिरवाली आल्पीय-श्रेणी के अन्तर्गत हैं। पंजाब, राजपूताना और उत्तर-हिन्दुस्तान में Nordic या उत्तरी-श्रेणी के बृहत् काय लम्बे सिरवाले आर्यों का निवास अधिक हुआ था ऐसा प्रतीत होता है। आर्यभाषी उपजाति-समूह ने भिन्न-भिन्न काल में तथा भिन्न-भिन्न दलों में भारत में प्रवेश किया। इनकी भिन्न-भिन्न उपजातियों या गोत्रों में प्रचलित मौखिक या बोलचाल की भाषा में थोड़ा-बहुत पार्थक्य हो गया था। लेकिन इन सब बोलचाल की भाषाओं के ऊपर कविता या साहित्य की एक भाषा इनमें बन गई थी, जिसका निदर्शन हमें ऋग्वेद में मिलता है। उत्तर-पंजाब में आर्यों का पहला निवास हुआ। इसके बाद आर्यजाति और भाषा का प्रसार पूर्व की ओर हुआ।

सिन्धु और पंचनद के देश से, सरस्वती और दृषद्वती के दोआब से होकर वे गंगा-यमुना के देश की ओर बढ़े। द्राविड़ और आस्ट्रिक भाषाएँ आर्यभाषा के विस्तार के साथ ही साथ परित्यक्त होने लगीं। बुद्धदेव के जीवन-काल में, गांधार या पूर्व-अफगानिस्तान से बंगाल की पश्चिमी सीमा तक सारे उत्तर-भारत में आर्यभाषा ही प्रधान हो उठी थी, धीरे-धीरे ईसा के कुछ पहले गौड़-बंग में आर्यभाषा का प्रतिष्ठित होना आरम्भ हुआ। आसाम और पूर्व बंग में यह प्रतिष्ठित हुई, उड़ीसा तथा महाकोशल और गुजरात तथा दाक्षिणात्य में भी आर्यभाषा सर्वजन-गृहीत हुई। भारत में आर्यभाषा का प्राचीनतम रूप हमें ऋग्वेद में मिलता है। ऋग्वेद ग्रंथ बहुत सभव है ई० पू० दशवीं शताब्दी में मध्यदेश अर्थात् आधुनिक उत्तर प्रदेश के पश्चिमी भाग में संगृहीत हुआ और प्राचीन ब्राह्मी लिपि में लिखा गया। इस प्राचीन या प्राथमिक युग की भारतीय आर्यभाषा को old Indo-Aryan अर्थात् प्राचीन या आदि भारतीय-आर्यभाषा कहा जाता है। जब ऋग्वेद की भाषा जरा पुरानी और साधारण लोगों के लिए आंशिक रूप से दुर्बोध्य होने लगी तब लगभग ईसा से पाँच सौ वर्ष पहले उत्तर-पश्चिमांचल और मध्यदेश में ब्राह्मणों के आश्रमों और विद्यायतनों में, इस भारतीय आर्य-भाषा का एक अर्वाचीनतर रूप विशिष्ट साहित्यिक भाषा के रूप में प्रतिष्ठित हुआ। आधुनिक उत्तर-पश्चिम पंजाब के अधि-वासी वैयाकरण ऋषि पाणिनि ने इस नवीन साहित्यिक भाषा के

व्याकरण ('अष्टाध्यायी') की रचना की, और इसका 'लौकिक' भाषा के नाम के उल्लेख किया। पीछे इस लौकिक भाषा का **संस्कृत** नाम पड़ा। 'देवभाषा' भी इसी को कहते थे। संस्कृत धीरे-धीरे प्राचीन और मध्ययुग की शिक्षा, साहित्य, दर्शन तथा ज्ञान-विज्ञान की—संक्षेप में समग्र मानसिक संस्कृति की—प्रधान वाहिनी बन गई; और भारत की हिन्दू सभ्यता की वाहिनी के रूप में समग्र भारत और भारत के बाहर इन्दोचीन, द्वीपमय-भारत और मध्य-एशिया में वह सुप्रतिष्ठित हुई, और तिब्बत, चीन, कोरिया और जापान में भी इसका अध्ययन-अध्यापन चलता रहा। बुद्धदेव के कुछ पूर्व (अर्थात् एक प्रकार से ६०० ई० पू० के लगभग) बोलचाल की आर्यभाषा परिवर्त्तित होती रही, और उदीच्य या पंजाब, मध्य-देश और प्राच्य अर्थात् अयोध्या-काशी-मगध, तथा दाक्षिणात्य आदि स्थानों में इसकी कुछ स्थानीय शैलियाँ प्रचलित होने लगीं। आर्यभाषा अब जिस नई अवस्था में पहुँची, उसे Middle Indo-Aryan अर्थात् **मध्य या मध्य-कालीन भारतीय-आर्य भाषा** नाम दिया गया। ई० पू० ६०० से आनुमानिक १००० ई० तक मध्य-कालीन-भारतीय-आर्यभाषा का युग है। इस युग में बोल-चाल की कुछ भाषाओं का साहित्य में भी व्यवहार होने लगा। ब्राह्मण-विरोधी बौद्धों और जैनों के प्रयत्न से, पालि तथा भिन्न-भिन्न प्रकार की प्राकृतों में, अर्थात् मध्य-कालीन आर्य भाषा के अनेक प्रान्तीय बोल-चाल के रूपों में, साहित्य-रचना होती रही। लगभग १००० ई० में आर्य-भाषा ने एक

और नई अवस्था में प्रवेश किया, और उसी समय आधुनिक युग की जीवित भारतीय आर्यभाषाओं का उद्‌भव हुआ। आर्यभाषा के आधुनिक युग को New Indo-Aryan अर्थात् नवीन या नव्य भारतीय-आर्य युग कहा जाता है। नवीन भारतीय-आर्य भाषाएँ अब मौखिक तथा साहित्यिक दोनों ही रूपों में प्रचलित हैं; लेकिन इनके पीछे प्राचीन और मध्ययुग की भारतीय सभ्यता की प्रकाशक संस्कृतभाषा अब भी है, पिछले २५०० वर्षों से मध्य-कालीन तथा नवीन दोनों युगों की प्रायः समस्त भारतीय आर्यभाषाओं के लिए, संस्कृत ही स्वाभाविक परिपोषक या परिवर्धक के रूप में विद्यमान रही है।

आर्यभाषाएँ भारत में सबसे अधिक प्रतिष्ठाशाली हैं। ये ही बहु-संख्यक जनता की भाषा है। २५ करोड़ ७० लाख से अधिक लोगों में ये आर्यभाषाएँ प्रचलित हैं—भारत की जनसंख्या के ७३ प्रतिशत से भी अधिक में। पारस्परिक सम्पर्क और संयोग का विचार करके मौखिक और साहित्यिक समस्त आधुनिक या नवीन भारतीय आर्य-भाषाओं को निम्नलिखित भागो या श्रेणियों में बाँटा गया है[1] :—

---

१. प्रत्येक भाषा के बाद उस भाषा के बोलने वालों की संख्या दी गई है। संख्या के पहले * चिह्न रहने पर Linguistic Survey of India के हिसाब के अनुसार संख्या समझनी चाहिए। ऊपर भिन्न-भिन्न भाषाओ के लिए दी गई संख्या के योगफल तथा समग्र भारत में १९३१ ई० में आर्यभाषी जनता की संख्या २५ करोड़

[क] उत्तर-पश्चिमी श्रेणी : (१) हिन्दकी या लहँदा या पश्चिम-पंजाबी ८५ लाख; (२) सिन्धी (कच्छी समेत) ४० लाख।

[ख] दक्षिणी श्रेणी : (३) मराठी, २ करोड़ १० लाख (इसके अन्तर्गत कोंकणी, * १५ लाख; और हलबी)।

[ग] पूर्वी श्रेणी : (४) उड़िया १ करोड़ १० लाख; (५) बँगला, ५ करोड़ ३५ लाख (विभिन्न प्रान्तीय रूपों समेत); (६) आसामी, २० लाख; (७) बिहारी भाषा-समूह,* ३ करोड़ ७० लाख, यथा—(।) मैथिली, *१ करोड़; (।।) मगही, * ६५ लाख, तथा (।।) भोजपुरी (सदानी या छोटा नागपुरी समेत), २ करोड़ ५ लाख। (बिहारियों को भूल से हिन्दी-भाषी कहा जाता है।)

[घ] पूर्व-मध्य श्रेणी : (८) कोशली या पूर्वी-हिन्दी

---

७० लाख, इन दोनों में मेल न होने का कारण है (१) ऊपर वाली भाषाओं पर विचार करने के समय ईरानी तथा दरद श्रेणी की आर्यभाषाओं को नहीं गिना गया है—केवल भारतीय आर्यभाषाओं को ही यहाँ लिया गया है; और इसके अलावा, (२) जन-गणना के समय भिन्न-भिन्न भाषाओं के लिए जो संख्या दी गई है, उनसे Linguistic Survey of India के हिसाब के अनुसार संख्या में मेल नहीं है; क्षेत्र विशेष में Linguistic Survey of India के हिसाब को स्वीकार करना पड़ा है।

(अवधी, बघेली तथा छत्तीसगढ़ी, ये तीन उपभाषाएँ), *२ करोड़ २५ लाख।

[ङ] मध्य-देशीय श्रेणी : (९) हिन्दी-गोष्ठी या पश्चिमी-हिन्दी (इसके अन्तर्गत मौखिक या जानपद हिन्दुस्तानी, खड़ी बोली तथा उसकी दो साहित्यिक शैलियाँ साधु या नागरी हिन्दी तथा उर्दू; और बाँगरू या जाटू; तथा ब्रजभाषा, कनौजी तथा बुन्देली), कुल जोड़ *४ करोड़ १० लाख; (१०) पंजाबी या पूर्व-पंजाबी (डोगरी समेत) १ करोड़ ५५ लाख; (११) राजस्थानी-गुजराती; तदन्तर्गत (।) गुजराती, १ करोड़ १० लाख; (।।) राजस्थानी उप-भाषा समूह १ करोड़ ४० लाख, यथा—पश्चिमी-राजस्थानी या मारवाड़ी (मेवाड़ी तथा शेखावटी इसके अन्तर्गत हैं) ६० लाख; पूर्व-मध्य राजस्थानी—जयपुरी तथा उसकी विभिन्न शैलियाँ यथा अजमेरी और हाड़ौती ३० लाख; उत्तर-पूर्व राज-स्थानी, मेवाड़ी तथा अहीरवाटी, १५ लाख; मालवी, ४३ लाख, इसके अलावा कुछ दूसरी उपभाषाएँ; और (।।।) भीली उपभाषासमूह, २० लाख; और इसके अतिरिक्त (।।।।) दक्षिण-भारत के तमिळ देश में प्रचलित सौराष्ट्री, तथा (।।।।।) पंजाब तथा कश्मीर की गूजरी; राजस्थानी के ही अन्तर्गत हैं।

[च] उत्तरी या पहाड़ी श्रेणी (१२) पूर्वी पहाड़ी या नेपाली, ६० लाख; (१३) मध्य पहाड़ी (प्रधान भाषा,

गढ़वाली तथा कुमाऊँनी),* १० लाख; और (१४) पश्चिमी पहाड़ी उपभाषा-समूह, *१० लाख (तथा भद्रवाही, पाडरी, चमेआली, कुलुई, क्युएठाली, सिरमौरी आदि।

इसके अतिरिक्त भारत के बाहर की दो और श्रेणियों या शाखाओं को भारतीय आर्य भाषाओं का उल्लेख होना चाहिए—

[छ] सिंहली श्रेणी—सिंहली (तथा तदन्तर्गत मालद्वीपीय भाषा।

[ज] Romani रोमनी या Gipsy जिप्सी श्रेणी—पश्चिम एशिया और यूरोप के नाना देशों में प्रचलित भारत से गई हुई 'घुमन्तू' जिप्सी जाति की भाषाएँ जो आजकल प्रायः समग्र यूरोप में प्रचलित हैं।

ऊपर जिन भाषाओं का नाम लिया गया है, वे आर्यभाषा की भारतीय शाखा के अन्तर्गत हैं। ईरान और भारत में प्रचलित आर्यभाषाएँ तीन विभिन्न शाखाओं में आती हैं—(१) भारतीय-आर्य, (२) दरद्-आर्य या पैशाची, और (३) ईरानी-आर्यभाषा। दरद्-आर्यभाषा आल्पीय चपटे सिरवाली जाति में विशेषरूप से प्रचलित आर्यभाषा का एक भेद है। बिलकुल उत्तरपश्चिम में, भारत और अफगानिस्तान के सीमान्त के दुर्गम पहाड़ी अंचल में इस दरद् श्रेणी की भाषाएँ प्रचलित हैं। दरद् श्रेणी में आती हैं—कश्मीरी (प्रायः १५ लाख)—यह पहले शारदा लिपि नामक देवनागरी के अनुरूप वर्णमाला में लिखी जाती थी; कश्मीरी भाषा पर संस्कृत का प्रभाव विशेष रूप

से था; **शीणा** (६८,०००), एवं **खोवर** या **चितराली, बशगाली, पशै** आदि कुछ और उपभाषाएँ, अल्पसंख्यक लोगों में प्रचलित हैं। इनमें एक कश्मीरी में ही थोड़ी बहुत साहित्य-निर्माण की चेष्टा दिखलाई पड़ती है

ईरानी शाखा की आर्यभाषाओं में दो मुख्य भाषाएँ भारत में मिलती हैं—पश्तो (या पख्तो), उत्तर-पश्चिम सीमान्त-प्रदेश में प्रायः १५ लाख लोगों में प्रचलित—इसके अतिरिक्त अफगानिस्तान में और भी बहुत से पख्तो-भाषी बसते हैं; और बलोचिस्तान की **बलोची** (६ लाख २८ हजार) । इस शाखा के अन्तर्गत **फ़ारसी** भाषा संसार की एक प्रधान संस्कृति-वाहिनी भाषा है, और भारत की मुसलमान संस्कृति की मुख्य वाहिनी यही फारसी भाषा थी।

कश्मीर के उत्तर में हुंजा के नगर राज्य में **बुरुशास्की** या **खाजुना** नामक एक भाषा प्रचलित है (जन-सख्या केवल २६,०००), इस भाषा ने भाषाविज्ञानियों को पहेली में डाल दिया है; इसके साथ दूसरी किसी भाषा-गोष्ठी की भाषा का मेल नहीं पाया जा रहा है—यह असम्पृक्त रूप से अकेली अवस्थान कर रही है। किसी-किसी को आस्ट्रिक श्रेणी की कोल-भाषा से इसका किंचित् सादृश्य दिखाई पड़ रहा है; दूसरी ओर किसी-किसी के मतानुसार, रूस के काकेशस पर्वत प्रदेश की विशिष्ट काकेशीय भाषा-गोष्ठी से बुरुशास्की का सम्बन्ध है।

वर्तमान काल में भारतवर्ष में चार विशिष्ट भाषा-गोष्ठियों के अन्तर्गत भिन्न-भिन्न भाषाएँ आती हैं—[१] आस्ट्रिक या

दाक्षिण या निषाद, [२] द्रविड़, [३] इन्दो-यूरोपीय (आर्य), और [४] भोट-चीन या मंगोल या किरात। इनकी परस्पर की गठन-प्रणाली में और धातु तथा शब्दावली में, तथा वाक्यरीति तथा वाक्यशैली में कुछ मौलिक पार्थक्य पाया जाता है—इनकी उत्पत्ति अलग अलग है। लेकिन प्रायः ३००० वर्षों से अधिक काल से ये भारत भूमि में प्रचलित हैं और इन पर परस्पर एक दूसरे का प्रभाव पड़ा है। विशेष करके दाक्षिण, द्रविड़ तथा भोट-चीन-भाषी जनगण द्वारा सामूहिक रूप में आर्यभाषा ग्रहण करने के फलस्वरूप, आर्य-भाषाओं के ऊपर इन सब अनार्य भाषाओं का प्रभाव पड़ा है, और धर्म, शिक्षा तथा संस्कृति की भाषा होने के कारण आर्यभाषा संस्कृत का (और कचित् प्राकृत का) प्रभाव भी अनार्यभाषाओं पर पड़ा है। इस प्रकार पारस्परिक प्रभाव के फलस्वरूप, इन विभिन्न भाषा-गोष्ठियों में मौलिक पार्थक्य के होते हुए भी, कुछ सामान्य लक्षण दिखाई पड़े हैं; उन लक्षणों को विशिष्ट रूप से 'भारतीय लक्षण' कहा जा सकता है; ये लक्षण आस्ट्रिक, द्रविड़ और आर्यभाषाओं में ही अधिक दिखाई पड़ते हैं (जैसे, ट, ड, ड़, ण, ळ—ये मूर्धन्य ध्वनियाँ; विशेष्य और सर्वनाम शब्द के रूप में शब्द के बाद 'परसर्ग' या 'अनुसर्ग' अथवा कर्मप्रवचनीय शब्दों का व्यवहार; क्रिया की गठन-प्रणाली की कुछ विशेषताएँ 'सहायक क्रिया'; 'प्रतिध्वनि-शब्द'; इत्यादि इत्यादि)। अतएव, यह कहा जा सकता है कि, इनके मौलिक पार्थक्य को पार कर भारत की आधुनिक विभिन्न गोष्ठियों की भाषाओं में एक

विशेष भारतीय लक्षण मिल रहा है; हिमालय से कन्या-कुमारी तक सर्वत्र भारत के जीवन में उसकी प्रतिष्ठा-भूमि या आधार-स्वरूप जो एक भीतरी समता या संयोग-सूत्र मिलता है, भाषा के क्षेत्र में वही संयोग-सूत्र इस भारतीय लक्षण या विशिष्टता का परिचायक है। सर हर्बर्ट रिसलि जैसे व्यक्ति, जो भारत की जनता की सहज या स्वाभाविक एक-राष्ट्रीयता के सम्बन्ध में योग्यता को स्वीकार करने के लिए विशेषरूप से अनिच्छुक थे, वे भी अखिल भारत के जीवन में इस समतासूत्र को लक्ष्य कर गये हैं।[१]

---

१. इस प्रसंग में आस्ट्रिक या दाक्षिण भाषाओं के सम्बन्ध में एक नूतन-प्रचारित मतवाद का उल्लेख करना उचित होगा। Pater W. Schmidt पादरी श्मिट् नामक एक जर्मन भाषा-विज्ञानी ने, पूर्व-प्रशान्त-महासागर से उत्तर तथा मध्य-भारत तक विस्तृत इस Austric या दक्षिण-देशीय भाषा-गोष्ठी की परिकल्पना की, और साधारणतः यह अब तक स्वीकृत होती आई है। लेकिन कुछ वर्ष हुए Hevesy Vilmos (Wilh-elm von Hevesy, Guillaume de Hevesy, William Hevesy) नामक एक हुंगेरियन पण्डित ने, भारत की कोल या मुण्डा श्रेणी की भाषाओ को Austric भाषावंश से विच्छिन्न करके, रूस, देश, फिन् देश, लाप् देश, एस्तोनिया और हुंगेरी में प्रचलित Finno-Ugrian **फिन्नो-उग्रीय** भाषागोष्ठी के संग संयुक्त करना चाहा हैं, ये फिन्नो उग्रीय भाषाएँ

परिशिष्ट में भारतीय भाषाओं के कुछ-कुछ निदर्शन दिये गये हैं।

———

(Magyar मजर या हुंगेरीय, Finn फिन, Esth एस्त, Lapp लाप, Vogul वोगुल, Ostyak ओस्त्याक, Siryen सिर्येन, Votyak वोत्याक तथा Cheremis चेरेमिस, तुर्की तथा याकूत् और मंचू और मंगोल भाषा से संबंधित है। हेवेसी समझते हैं कि संथाली आदि कोल भाषाएँ, इन भाषाओं के मूल आदि-फिन्नो-उग्रीय भाषा से ही निकली हैं, अति प्राचीन काल में आदि-फिन्नो-उग्रीय भाषी किसी जाति के भारतवर्ष में आगमन के फलस्वरूप, प्रागैतिहासिक युग में उनकी भाषा ने भारतवर्ष में कोल या मुण्डा भाषा का रूप ग्रहण किया। हेवेसी की कल्पना के इन फिन्नो-उग्रीय लोगों के भारत में आगमन का कोई दूसरा प्रमाण नहीं है। उन्होंने संथाली आदि से फिन्नो उग्रीय भाषाओं की जो तुलनात्मक आलोचना की है, वह सर्वसम्मति से स्वीकृत नहीं हुई है, उनके वक्तव्य के तर्कों को निर्धारित करने के लिए किसी एक व्यक्ति में कोल तथा फिन्नो-उग्रीय भाषाओं का पूर्ण ज्ञान नहीं पाया जा रहा है—स्वयं हेवेसी में भी उस योग्यता का अभाव है।

[३] वर्त्तमान अवस्था

इन चार विभिन्न भाषागोष्ठियों में से आस्ट्रिक तथा भोट-चीन-गोष्ठियों की भाषाओं की भारत में कोई प्रधानता नहीं है। जो लोग इन भाषाओं को बोलते हैं, उन्हें इनके अतिरिक्त एक आर्यभाषा जाननी ही पड़ती है—द्विभाषी होना उनके लिए अवश्यम्भावी है। लेकिन जहाँ तक संभव हो, इन भाषाओं के संरक्षण के लिए, इनके पठन-पाठन में प्रोत्साहन देना अवश्य उचित है; ये भाषाएँ जिनकी मातृभाषा हैं, वे जिसमें इन्हें जीवित रख सकें, इस विषय में सहानुभूतिपूर्ण सहायता करनी चाहिए। असंस्कृत या साहित्य विहीन पिछड़ी हुई 'जंगली' द्रविड़ भाषाओं के बारे में भी यही बात कही जा सकती है,—जो लोग गोंड, ओराँव, कन्ध आदि भाषाएँ बोलते हैं, उनके लिए तेलुगु उड़िया हिन्दी मराठी आदि किसी भी एक सुसभ्य द्रविड़ अथवा आर्यभाषा का ग्रहण करना अनिवार्य है : कहा जाता है कि सुसभ्य द्रविड़ भाषाओं में तमिळ तथा मलयालम आपस में कुछ सहजबोध्य हैं, बँगला और उड़िया अथवा हिन्दी और पंजाबी की तरह। लेकिन सब द्रविड़ भाषाओं में, संयोग-सूत्र-स्वरूप सब के लिए सहज-बोध्य कोई भी एक द्रविड़ भाषा नहीं है। लेकिन पहले (पृष्ठ ३८-४० पर) दी गई आर्यभाषाओं तथा उपभाषाओं में, हिन्दी या हिन्दुस्तानी भाषा एक विशेष लक्षणीय संयोग-सूत्र के रूप में विराजमान है। जो लोग भारत की विभिन्न

आर्यभाषाओं को बोलते हैं, वे आपस में अगर कभी किसी आधुनिक भारतीय भाषा का व्यवहार करते हैं तो साधारणतः हिन्दी का ही व्यवहार करते हैं, चाहे वह हिन्दी शुद्ध हो अथवा टूटी-फूटी या अशुद्ध हो। बंगाली तथा मराठे, पंजाबी तथा गुजराती, उड़िया और मारवाड़ी, मराठे तथा नेपाली भोजपुरी और आसामी यदि वे अंगरेजी अथवा संस्कृत नहीं जानते तो आपस में हिन्दी मे ही बातचीत करने की चेष्टा करेंगे। और यह अति सहज भाव से ही, बिना किसी की आपत्ति या चेष्टा के, हो रहा है। हिन्दी जैसी एक विराट् समग्र आर्यावर्त्त-व्यापी अन्तर्प्रान्तीय भाषा का होना, आधुनिक भारत के लिए कम सुविधा की बात नहीं।

इस समय जितनी आर्यभाषाएँ और उपभाषाएँ प्रचलित हैं, सभी समान महत्त्व की नहीं हैं। पृष्ठ ३८-४० पर उल्लिखित उतनी विभिन्न आर्यभाषाओं में केवल ११ साहित्यिक भाषा के रूप में सुप्रतिष्ठित हैं, औरों का साहित्यिक स्थान या मर्यादा अब नहीं रही अथवा अब तक नहीं बनी। फ्रांस के दक्षिण प्रदेश में Provençal प्रभाँसाल भाषा प्रचलित है। यह भाषा उत्तर फ्रांस की फ्रांसीसी भाषा से बहुत कुछ अलग है। किन्तु प्रभाँसाल-भाषीगण अब अपनी मातृभाषा का साहित्य तथा वृहत्तर जातीय जीवन में व्यवहार नहीं करते, इसकी जगह उन्होंने उत्तर-फ्रांस की फ्रांसीसी को ही ग्रहण किया है, प्रभाँसाल को वे केवल घर में बोला करते हैं। उसी तरह, हिन्दकी (या पश्चिमी पंजाबी), (पूर्वी) पंजाबी, राजस्थानी, भीली, पश्चिमी पहाड़ी, मध्य पहाड़ी,

व्रजभाषा-कन्नौजी-बुन्देली, कोशली या पूर्वी हिन्दी (अवधी, बघेली, छत्तीसगढ़ी), और बिहारी अर्थात् मैथिली, मगही तथा भोजपुरी—इतनी विभिन्न भाषाएँ जो लोग घर में बोलते हैं, वे अब इन भाषाओं को साहित्य, शिक्षा और राष्ट्रगत जीवन में व्यवहार नहीं करते हैं, उन्होंने अपनी अपनी मातृभाषा की जगह साधु या नागरी हिन्दी अथवा उर्दू को ग्रहण किया है। जैसे, फ्रांस में प्रभॉसाल भाषा में प्राचीनकाल—अर्थात् मध्ययुग—में एक प्रौढ़ साहित्य था जो इतालीय और फ्रांसीसी साहित्य से मुकाबला करता था , किन्तु अब प्रभॉसाल केवल ग्राम्य भाषा बन गई है, उसी तरह एक समय व्रजभाषा, राजस्थानी (डिंगल या मारवाड़ी), बुन्देली, कोशली तथा मैथिली में साहित्य था, पंजाबी में अब भी साहित्य की रचना होती है—तो भी, ये भाषाएँ अब हिन्दी या उर्दू के चपेटे में पड़ी हैं, इनकी साहित्यिक मर्यादा अब नहीं रही, ये ग्राम्यजन की भाषाओं के पद पर अवनमित होगई है। कहीं-कहीं इनमें से दो-एक को फिर साहित्यिक मर्यादा देकर हिन्दी की बगल में ला खड़ा करने की, थोड़ी-बहुत चेष्टा की जा रही है, जैसे मैथिली, राजस्थानी, कोंकणी में, जैसे भोजपुरी में। हाल ही में हिन्दी के दो-एक नामी लेखकों ने 'विकेन्द्रीकरण' के नाम से एक साहित्य और संस्कृति-विषयक आन्दोलन की अवतारणा की है; हिन्दी या हिन्दुस्तानी भाषा के एकता-सूत्र में ग्रथित (उस एकता सूत्र के मूल्य या उपयोगिता पर इस समय विचार नहीं करूँगा) उत्तर-भारत के

शिक्षित जनों में अनेक इससे विशेष विचलित हो गये हैं। इस विकेन्द्रीकरण का उद्देश्य है विभिन्न प्रान्तीय या जानपद भाषाएँ, जो सचमुच मे मातृभाषा है, उनकी सहायता से जहाँ तक संभव हो शिक्षा देने की व्यवस्था करना, और उन्हें जहाँ तक संभव हो फिर साहित्य में प्रयोग करना। विभिन्न जनपदों की मातृभाषाओं पर हिन्दी या उर्दू के दबाव के कारण लोगों के मन में जो एक प्रच्छन्न घबराहट है, वह इस विकेन्द्रीकरण की चेष्टा के मूल में बहुत कुछ काम कर रही है, इस विषय में संदेह नही। इन चेष्टाओं के फलस्वरूप, अगर उपर्युक्त भाषाओं मे कुछ और—जैसे कोकणी, राजस्थानी, मैथिली, भोजपुरी अपने अपने प्रदेश में साहित्यिक भाषा के पद पर पुनः प्रतिष्ठित या नये सिरे से प्रतिष्ठित होती हैं, तो भी अन्तप्रान्तीय भाषा के रूप में हिन्दी या हिन्दुस्थानी की प्रयोजनीयता या मूल्य कम नहीं होगा—इससे साहित्यिक भाषा के रूप में हिन्दी का प्रसार कुछ कम होने पर भी, अन्तर्प्रान्तीय भाषा के तौर पर इसका स्थान रंचमात्र भी कम नहीं होगा।

यह निर्विवाद सत्य है कि, आधुनिक भारतवर्ष की सारी भाषाओं में हिन्दी या हिन्दुस्तानी ही इनकी प्रतिभू-स्थानीय भाषा है। यह २५ करोड़ ७० लाख मानवों की सहज तथा स्वाभाविक अन्तर्प्रान्तीय भाषा है; इस २५ करोड़ ७० लाख के अलावा कई लाख लोग इस भाषा को समझ सकते हैं। इस भाषा की दो साहित्यिक शैलियाँ नागरी-हिन्दी तथा उर्दू, १५ करोड़ से अधिक लोगों की साहित्यिक भाषा बन गई हैं। हिन्दी

(हिन्दुस्तानी) का स्थान, जनसंख्या के हिसाब से, संसार की सारी भाषाओं में तृतीय है। उत्तरी चीनी और अंगरेजी के बाद ही इसका स्थान है। हिन्दी का व्यवहार करने वाले लोगों के संबंध में आगे थोड़ा और विचार करना होगा।

भारत में हिन्दी (हिन्दुस्तानी) के बाद ही बँगला भाषा का नाम लेना पड़ता है। जो लोग **मातृभाषा** के तौर पर बँगला बोलते हैं यदि उनकी संख्या पर विचार किया जाय तो, कहना पड़ेगा कि, संसार की भाषाओं में बँगला का स्थान सप्तम है—क्रमानुसार उत्तरी-चीनी, अंगरेजी, रूसी, जर्मन, जापानी और स्पेनीय के बाद बँगला आती है। यद्यपि बँगला बोलने वालों से बहुत अधिक लोग हिन्दी (हिन्दुस्तानी) बोलते और समझते हैं, फिर भी यह स्वीकार करना पड़ेगा कि बँगला से कम संख्यक लोग हिन्दी (हिन्दुस्तानी) को मातृभाषा के तौर पर घर में व्यवहार करते हैं। रवीन्द्रनाथ ठाकुर की भाषा होने के कारण आधुनिक भारत और भारत के बाहर के संसार में बँगला को एक विशेष मर्यादा मिली है। वास्तव में बँगला एक प्रौढ़ और बहुत साहित्यिक-सेवित भाषा है। इसकी आधुनिक साहित्य-सम्पदा विशेष रूप से उल्लेखनीय है। उड़िया और आसामी, बँगला की सगी बहनें हैं, लेकिन इन दोनों भाषाओं का स्वतन्त्र साहित्यिक-जीवन भी है। आसामी अपने प्रदेश आसाम में भी बहुत थोड़े लोगों की भाषा है। आसामी शिक्षित जनों के मन में यह आशंका सदा विद्यमान रहती है कि आसामी भाषा, भगिनी तुल्य और बहुसंख्यकों की भाषा बँगला के दबाव से विध्वस्त

न हो जाय; बँगला भाषी ५ करोड़ से ऊपर हैं और आसामी-भाषी केवल २० लाख हैं। इसीलिए आसामी शिक्षितवर्ग आसामी-साहित्य को पृथक् और जीवित साहित्य बनाये रखने के लिए सदा प्रयत्नशील है।

मैथिली मगही तथा भोजपुरी, ये तीनों बँगला आसामी और उड़िया से अत्यन्त घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित हैं, किन्तु जो लोग मैथिली, मगही या भोजपुरी बोलते हैं, उनमें से अधिकांश ने हिन्दी को ही साहित्य और शिक्षा की भाषा मान लिया है। मैथिली में उल्लेखनीय काव्य-साहित्य है, कवि विद्यापति मैथिल थे; इसीलिए फिर मैथिली को पूर्व-मर्यादा पर ले आने के लिए बहुत से मैथिल विद्वान् चेष्टा कर रहे हैं। भोजपुरी में साहित्य कहने के लिए विशेष कुछ नहीं है—कबीर रचित दो-चार पद और आधुनिक कुछ ग्राम-गीत मात्र हैं; लेकिन भोजपुरी-भाषीगण अपनी भाषा के बारे में अत्यन्त सजग हैं और इसीलिए साहित्य की भाषा के तौर पर मैथिली के साथ-साथ भोजपुरी की पुनः प्रतिष्ठा असम्भव नहीं है। मातृभाषा की मर्यादा देकर मैथिली भाषा को हिन्दी, बँगला, उड़िया आदि के साथ कलकत्ता और पटना विश्वविद्यालयों ने स्थान दिया है।

कोसली या पूर्वी हिन्दी ने सोलहवीं शताब्दी में भारतवर्ष को मलिक मुहम्मद जायसी और गोस्वामी तुलसीदास जैसे कवि दिये हैं, लेकिन इसका पुरातन साहित्य-गौरव अब अस्त हो गया है—सभी कोसली भाषा-भाषियों ने अब हिन्दी को साहित्य की भाषा स्वीकार कर लिया है। कोसली की

उपभाषाएँ बघेली तथा छत्तीसगढ़ी कभी भी साहित्य की भाषाएँ नहीं थीं।

जो लोग पजाबी (पूर्वी पंजाबी) और हिन्दकी (पश्चिमी-पंजाबी) बोलते हैं, उनमें—विशेष करके सिक्ख सम्प्रदाय के लोगों में—साहित्य के लिए पंजाबी का व्यवहार थोड़ा सा है; लेकिन पंजाब के अधिकांश लोग हिन्दी और उर्दू की चर्चा करते हैं। सिक्ख लोग देवनागरी की जाति की शारदा लिपि से प्रसूत गुरुमुखी वर्णमाला में पंजाबी लिखते हैं, और मुसलमान लोग फारसी या उर्दू अक्षरों में पंजाबी लिखा करते हैं।

पश्चिमी राजस्थानी तथा गुजराती १६०० ई० तक एक ही भाषा थी—राजस्थान और गुजरात दोनों का प्राचीन साहित्य एक ही है। लेकिन धीरे-धीरे गुजराती स्वतन्त्र पथ पर चली, और पश्चिमी राजस्थानी ने **डिंगल** के नाम से एक स्वतंत्र साहित्यिक भाषा बना डाली। डिंगल साहित्य राजपूताना के भाटों तथा चारणों के द्वारा विशेष समृद्ध हो उठा। पश्चिमी राजस्थानी का मुख्यरूप मारवाड़ी है—इसका केन्द्र जोधपुर है; इसके अतिरिक्त इसकी कुछ स्थानीय शैलियाँ हैं; मेवाड़ की बोल-चाल की भाषा उनमें से एक है। सारे राजपूताने में इस पश्चिमी राजस्थानी की ही प्रतिष्ठा सबसे अधिक हुई थी। राजस्थान के दूसरे प्रदेशों की बोलचाल की भाषाएँ, जैसे उत्तरी राजस्थानी (मेवाती तथा अहीरवाटी), पूर्वी राजस्थानी (जैसे जयपुरी तथा उसकी उपभाषाएँ, और कोटा शहर के चारों ओर की हाड़ौती), दक्षिणी राजस्थानी या भीली और मालवी—डिंगल से

अलग, केवल बोलचाल की भाषा के रूप में ही प्रचलित थीं और हैं। इनकी साहित्यिक प्रतिष्ठा नहीं हुई; इनका हमेशा से हिन्दी (ब्रजभाषा, बुन्देली तथा खड़ीबोली) की ओर ही झुकाव रहा है। दिल्ली-आगरा के प्रताप से मारवाड़ी या राजस्थानी की स्वतंत्रता क्षुण्ण हुई और धीरे-धीरे दिल्ली की भाषा हिन्दी (विशेष करके ब्रिटिश राज्य में) समग्र राजस्थान की शिक्षा और साहित्य की भाषा बन गई है। भाषा में दिल्ली आगरा के प्रभाव की बात निम्नलिखित तुकबन्दी से समझी जा सकती है—

'हियर, देयर' सोलू आणा, 'इधर, उधर' बार।
'इकड़े, तिकड़े' आठ आणा, 'अठे, वठे' चार॥

(अर्थात् 'यहाँ वहाँ' यानी अंगरेजी 'हियर देयर' का मूल्य पूरा सोलह आने है, हिन्दी के 'इधर उधर' का बारह आने, मराठी 'इकड़े तिकड़े' का आठ आने और राजस्थानी 'अठे वठे' के केवल चार हो आने; अर्थात् अपने देश में देश-भाषा की मर्यादा यही है !)

राजस्थानी के लिए गुजराती के साथ मिलकर चलना उचित था, लेकिन उत्पत्ति का प्रभाव न हुआ, राजनैतिक और सांस्कृतिक प्रभाव की ही विजय हुई; राजस्थानी ने हिन्दी को मान लिया (जैसे उत्पत्ति के हिसाब से मैथिली, मगही और भोजपुरी को बँगला के साथ रहना चाहिए था, लेकिन इन्होने हिन्दी को ही स्वीकार किया।) अब फिर प्राचीन डिंगल-साहित्य के विवेचन के फलस्वरूप, राजस्थान के कति-

पय कवि मरु भाषा या मारवाड़ी में कविता कर रहे हैं, पूर्वी राजस्थानी के आधार पर फिर नाटक तथा दूसरे साहित्य की रचना चल रही है, राजस्थानी को साहित्य-मर्यादा लौटा लाने के लिए काफी आन्दोलन दिखाई पड़ रहा है। इसके फलस्वरूप, हो सकता है एक या एकाधिक राजस्थानी बोलियाँ साहित्यिक भाषा के रूप में प्रतिष्ठित हो जायँ। लेकिन अभी तक मारवाड़ी सेठ या व्यापारी लोग अधिकतर हिन्दी ही के लिए अत्यन्त उत्साही तथा उसी के परिपोषक हैं।

गुजराती अर्थात् राजस्थानी-गुजराती का प्राचीन-साहित्य समग्र भारतीय आर्य-भाषाओं में प्रसार और विचित्रता की दृष्टि से उल्लेखनीय है—प्राचीन बँगला या हिन्दी या मराठी का साहित्य इतना विराट् नहीं है। यह साहित्य मुख्यतः जैन लेखकों की कीर्त्ति है। आधुनिक गुजराती-साहित्य काफी बड़ा और प्रगतिशील है—शायद, बँगला साहित्य के बाद ही आधुनिक गुजराती का नाम लेना पड़ता है। यह महात्मा गांधी की मातृभाषा है, हिन्दी के पृष्ठ-पोषक होने पर भी, अपनी मातृ-भाषा में उन्होंने बहुत कुछ लिखा है।

पश्चिमी पहाड़ी (पाडरी, भद्रवाही, चमेआली तथा गादी, कुलूई, मण्डेआली, क्युंठाली, सतलजी, बघाटी, सिरमौरी तथा जौनसरी) और मध्य-पहाड़ी (गढ़वाली या गाड़ोयाली और कुमाऊँनी) उपभाषाएँ हिमालय के दक्षिण अंचल में कश्मीर और नेपाल की छोटी-मोटी उपजातियों द्वारा बोली जाती है; इनमें (विशेष करके मध्य-पहाड़ी में) कुछ

थोड़े से गीतों तथा गाथाओं के सिवा और कोई साहित्य नहीं है; हिन्दीभाषा ने इन पहाड़ियों में अब अनायास ही अपना स्थान बना लिया है। पूर्वी पहाड़ी नेपाल की भाषा है, इसके अन्य नाम हैं खस-कुरा या खस भाषा, गोरखाली और पर्बतिया। यह हिन्दू नेपाल की राज-भाषा है, और यह मंगोल भोंट-ब्रह्म श्रेणी के लोगों में फैल रही है। देवनागरी में लिखी नेपाली बहुत कुछ हिन्दी की ही तरह है।

मराठी दक्षिण की प्रमुख आर्यभाषा है। इसका उच्च-श्रेणी का साहित्य है। कोंकणी भाषा इससे सम्बन्धित है, अंशतः इसे मराठी की उपभाषा कहा जा सकता है। गोआ के देशी रोमन कैथलिक ईसाइयों में रोमन अक्षरों में कोंकणी में साहित्य तैयार हो गया है। लेकिन कोंकणी को मराठी की प्रतिस्पर्धी साहित्यिक भाषा के रूप में खड़ा करने की चेष्टा उतनी सफल नहीं हुई है। इसका प्रधान कारण है, बोलचाल की कोंकणी में पाँच-छै रूप-भेद पाये जाते हैं।

उत्तर के कश्मीर में कश्मीरी भाषा प्रचलित है। नब्बे प्रति-शत से अधिक कश्मीरी अब मुसलमान हो गये हैं। कश्मीरी पहले देवनागरी से सम्पृक्त शारदा लिपि में लिखी जाती थी, आजकल फारसी-लिपि का व्यवहार होता है। कश्मीरी दरद-श्रेणी की भाषा है, इसमे संस्कृत और संस्कृत-जात प्राकृत का प्रभाव अत्यधिक देखा जाता है। आजकल को कश्मीरी में साहित्य वैसा कुछ नहीं है, कश्मीरी-भाषी लोग सहज ही में हिन्दुस्थानी (उर्दू) सीख लेते हैं।

हिन्दी, हिन्दोस्तानी या हिन्दुस्तानी अथवा हिन्दुस्थानी, और खड़ी-बोली वगैरह भिन्न-भिन्न नामों से कही जानेवाली केवल एक मूल-भाषा है, जो पश्चिमी-हिन्दी' श्रेणी के अन्तर्गत एक बोली या भाषा या उपभाषा मात्र है। लिखित साहित्य में व्यवहृत होने के समय लिपि और उच्चकोटि के शब्दों के ग्रहण में यदि यह भाषा दो विभिन्न भाषाओं का रूप ग्रहण करने के फेर में न पड़ती तो समस्त उत्तर भारत का भाषा-विषयक एकता-विधान बहुत सहज होता।

उत्तर-भारत तो इसी एक मात्र हिन्दी के सूत्र में सहज ही में गूँथा जाता; दक्षिण-भारत के समस्त द्रविड़-भाषियों को भी इस प्रकार की सर्वजनग्राह्य दूर-स्थित हिन्दी को अन्तःप्रान्तीय भाषा के रूप में स्वीकार करने में बाधा न होती और समस्त आधुनिक या नवीन भारतीय आर्य-भाषाओं की तरह हिन्दी में भी Syntax या वाक्यरीति और idiom या वाक्य-भंगी में अनेक प्रकार से द्रविड़ भाषाओं से समानता है; इसके फलस्वरूप, द्रविड़ भाषियों के लिए हिन्दी सीख लेना बहुत कठिन नहीं होता। इसके अलावा द्रविड़ भाषाओं में जो प्रचुर संस्कृत (तथा प्राकृत) शब्द मिलते हैं, वे भी हिन्दी के साथ इनके एक और योगसूत्र का काम करते है। हिन्दी का वातावरण द्रविड़-भाषियों के लिए नया नहीं हैं।

[४] हिन्दी, हिन्दुस्तानी या हिन्दुस्थानी, खड़ीबोली, उर्दू, ठेठ हिन्दी

अफगानिस्तान से आये हुए तुर्कों और ईरानियों ने जब ११-१३वीं शताब्दी में उत्तर भारत को जीता तो उनके तीव्र आक्रमणों के फलस्वरूप ऐसी आशंका हुई थी कि प्राचीन अर्थात् हिन्दू भारत की सांस्कृतिक धारा एकदम विध्वस्त और विनष्ट हो जायगी। इस समय भाषा के विषय में देव-भाषा (अर्थात् धर्म की भाषा) और उच्च साहित्य और ज्ञान-विज्ञान की भाषा संस्कृत के अलावा, आजकल के पंजाब, उत्तर प्रदेश और राजस्थान-गुजरात में जन-भाषा के रूप में प्रचलित, 'अपभ्रंश' अर्थात् अन्तिम युग की मध्यकालीन बोल-चाल की भारतीय आर्य-भाषाओं के आधार पर बनी एक साहित्य की भाषा, प्रायः समग्र आर्य-भाषी उत्तर-भारत में व्यवहृत होती थी। बोलचाल की भाषा के आधार पर बनी वह साहित्यिक-भाषा साधारणतः 'शौरसेनी अपभ्रंश' अथवा संक्षेप में 'अपभ्रंश' कहलाती थी। महाराष्ट्र, सिन्धुप्रदेश, पश्चिम पंजाब और कश्मीर से बिहार तथा बंगाल और नेपाल तक इसका क्षेत्र था। पूर्वोल्लिखित पंजाब राजस्थान-गुजरात तथा पश्चिमी उत्तर-प्रदेश इस भाषा की निजभूमि होने पर भी, अन्यत्र जिन अंचलों में प्राचीन बँगला, प्राचीन मैथिली, प्राचीन भोजपुरी, प्राचीन कोसली, प्राचीन मराठी आदि विशिष्ट जन-पदी भाषाएँ चलती थीं, उन अंचलों में भी इसने अपना स्थान

बना लिया था—महाराष्ट्र तथा गौड़-बंग के कवि भी इसमें काव्य या पदों की रचना करते थे। विशेष करके उत्तर-भारत के राजपूत या क्षत्रिय राजाओं की सभा में इस साहित्यिक-अपभ्रंश भाषा का प्रचलन और आदर था। तुर्क आक्रमण के समय, १२-१३वीं शताब्दी में, यह साहित्यिक अपभ्रंश बहुत कुछ पुरानी या अतीत युग की भाषा बन गई थी, इसके आकार और इसकी प्रकृति से कथित या मौखिक (बोल-चाल की) भाषाएँ बहुत कुछ बदल गई थीं। इसी साहित्यिक अपभ्रंश को उत्तर काल मे राजपूताना के भाट और चारणगण **पिंगल** कहते थे। तुर्क आक्रमण के फल-स्वरूप जब पंजाब से बंगाल तक, सिन्ध तथा पंचनद और गंगा-यमुना के देश में, समग्र राजपूत राज्यों का अन्त हुआ, तब इस साहित्यिक अपभ्रंश या पिंगल के साहित्यिक प्रयोग एवं उसकी मर्यादा का ह्रास हुआ। भाषा के तौर पर युगोपयोगी न रहने के कारण यह कुछ अंशों में दुर्बोध्य हो गई। तब अपभ्रंश की साहित्यिक धारा उदीयमान लोक-भाषाओं या जानपदभाषाओं में होकर प्रवाहित होने लगी। उत्तर-पश्चिम भारत में यह धारा राजस्थानी गुजराती तथा मथुरा प्रदेश की ब्रजभाषा और आंशिक रूप से कोसली या पूर्वी हिन्दी के भीतर आ गई। तुर्कों के आक्रमण का प्रभाव प्रारम्भ में इन लोक-भाषाओं पर नहीं पड़ सका।

प्रथमतः पंजाब-प्रदेश तुर्क-गजनवी राज्य का अंश हो गया, पंजाब भारत में तुर्क-मुसलमानों का अड्डा बन गया। प्रथम मुसलमान-विजित भारतीय प्रदेश था सिन्धु-प्रदेश, अरब लोग

मिली। स्वाभाविक रीति से धीरे-धीरे दो-दो चार-चार करके तुर्कों और ईरानियों द्वारा व्यवहृत होने वाले फारसी शब्द भी इसमें आने लगे। किन्तु प्रारम्भ में हिन्दी और संस्कृत शब्दों को जबरदस्ती निकालकर इसमें फारसी के शब्द ठूँसने की कोशिश नहीं की गई। बाद में दिल्ली के राज-दरबार तथा मुसलमान अमीरों के सम्बन्ध के कारण इस भाषा को साधु या पदस्थ भाषा की प्रतिष्ठा मिल गई; यह टकसाली भाषा बन गई। मुसलमान राजशक्ति तथा उससे संबंधित हिन्दुओं द्वारा व्यवहृत होने के कारण साहित्य की भाषा न होने पर भो बोलचाल की मुख्य अथवा प्रतिष्ठित भापा होने से पीछे इसका एक नया नाम पड़ा '**खड़ी बोली**' और इसकी तुलना में बोलचाल की दूसरी बोलियो का, यहाँ तक कि साहित्यिक ब्रजभाषा, कोसली तथा डिंगल आदि का भी नाम हुआ '**पड़ी बोली**' अर्थात् पतित भाषा। आरम्भ में यह खड़ी बोली केवल बोलचाल की भाषा थी। उस समय इसमें साहित्य की रचना नहीं हुई थी। उत्तर भारत का प्रत्येक हिन्दू या मुसलमान (चाहे वह देशी मुसलमान हो या विदेशागत हो या विदेशी वंशजात हो) भारत की भाषा मे, 'हिन्दी' या 'हिन्दवी' या 'हिन्दुई' में, कुछ लिखना शुरू करने पर अपनी निवासभूमि अथवा अपनी शिक्षा या रुचि के अनुसार डिंगल या राजस्थानी, ब्रजभाषा या कोसली या पुरानी पंजाबी में ही लिखता था। किन्तु धीरे-धीरे दिल्ली की खड़ी बोली जिसके अनुरूप बोलचाल की भाषा, दिल्ली के बाहर पूर्व पंजाब और उत्तर प्रदेश के पश्चिमी भाग रुहेलखंड और मेरठ

कमिश्नरी में बोली जाती है, पंजाब और उत्तर प्रदेश में साहित्य के क्षेत्र में भी प्रवेश करने लगी। अपभ्रंश भाषा में खड़ी बोली के पूर्व रूप में लिखे कुछ पद मिलते हैं अतएव यह साहित्यिक प्रयोग एक दम नई वस्तु न थी। कबीर की रचना में हमें मुख्यतः ब्रजभाषा मिलती है लेकिन इसमें कोसली या पूर्वी हिन्दी का कुछ कुछ मेल पाया जाता है और खड़ी बोली का रूप भी यथेष्ट परिमाण में मिलता है। कहा जाता है कि ईसा की पन्द्रहवीं शताब्दी कबीर के जीवन काल में बीती (१३९८—१५२०)। इस प्रकार चौदहवीं और पन्द्रहवीं शताब्दी से ही दिल्ली की भाषा खड़ी बोली धीरे-धीरे साहित्य के अन्दर अपना स्थान बना रही थी, और ब्रजभाषा तथा कोसली पर अपना प्रभाव डाल रही थी। अन्त में सत्रहवीं तथा अठारहवीं शताब्दी में दिल्ली की शुद्ध खड़ी बोली का साहित्य में प्रयोग शुरू हुआ और इस विषय में मुख्य प्रेरणा आई दक्खिन से।

मुसलमान आक्रमणकारीगण चौदहवीं शताब्दी से आर्यावर्त के पंजाब और मध्य प्रदेश अर्थात् उत्तर प्रदेश के पश्चिमाञ्चल से यहाँ की जनभाषा को लेकर दक्षिण में जाने लगे और चौदहवीं शताब्दी के मध्यभाग में बहमनी राज्य और पीछे से सोलहवीं शताब्दी के प्रथम पाद में बहमनी राज्य को तोड़ कर गोलकुण्डा, बीदर, बरार, अहमदनगर और बीजापुर राज्य की इनके द्वारा स्थापना हुई। स्थानीय मराठों, तेलंगियों और कन्नडों के ये राजा बन बैठे। उत्तर भारत से ये लोग जो पंजाबी या पश्चिमी हिन्दी बोलियाँ या भाखायें ले गये वे दक्षिण में दकनी

या दक्नी या दक्खिनी कहलाईं और स्थानीय हिन्दुओं ने इन्हें 'मुसलमानी' कहा, क्योंकि दक्षिण में बसे हुए मुसलमानों में ही इनका मुख्य रूप से प्रचलन था। उत्तर भारत से दक्खिन में आये हुए इन 'दकनी' भाषी मुसलमानों का साहित्यिक जीवन इस घरेलू भाषा को लेकर नये सिरे से प्रारम्भ हुआ। उधर पंजाब मे मुसलमानों के सूफी साधु बाबा फरीदुद्दीन गंजशकर (११७३—१२३६) ने वहाँ प्रचलित अपभ्रंश मिश्रित साहित्यिक भाषा में पदों की रचना की। पूर्व भारत के कोसल प्रान्त के एक अन्य सूफी साधक मलिक मुहम्मद जायसी ने कोसली भाषा में 'पद्मावत' नामक काव्य-ग्रंथ की रचना की (१५४५); इसी प्रकार दक्षिण भारत में बीजापुर और गोलकुण्डा में बसे हुए मुसलमानों में भी सूफी कवि दिखाई पड़े। इनमें सबसे प्राचीन ख्वाजा बन्दा नवाज़ गेसुएदराज (१३२१—१४२२) हैं। इनकी रचना आज भी उपलब्ध है। इनकी लिखी दो पुस्तकें हैं। इनमें से एक सूफी धर्म की छोटी सी गद्य की पुस्तक 'मराजुल आशिक़ीन' हैदराबाद से प्रकाशित हुई है। इसकी प्राचीनता विचारणीय है। इनके बाद के प्रसिद्ध लेखक हैं बीजापुर के शाह मीरनजी [मृत्यु १४९६ ई०] और उनके पुत्र शाह बुरहानुद्दीन जानम [मृत्यु १५८२ ई०] तथा गुजरात-अहमदाबाद के मियाँ खूब मुहम्मद चिश्ती जिन्होंने १५७८ ई० में अपना "खूबतरंग" काव्य लिखा। तत्पश्चात् गोलकुंडा के विख्यात सुलतान कुली कुतुबशाह [राजत्व काल, १५८०—१६११ ई०] तथा मुल्ला वजही आते हैं। इन्होंने १६०९ ई० में 'दकनी भाषा' में

'कुतुब मुश्तरी' तथा १६३४ में 'सबरस' लिखा । प्रारम्भ से ही इन दक्षिण के मुसलमान कवियों पर उत्तर भारत के हिन्दुओं का कुछ विशेष प्रभाव नहीं पड़ा । अतएव स्वाधीन रूप में क्रमशः क्षीण होती हुई प्राचीन भाषा में काव्य की रचना इनके द्वारा होती रही । उत्तर भारत की नागरी और शारदा लिपियों को त्याग कर फारसी अक्षरों में लिखे जाने के कारण 'दकनी भाषा' पर फारसी का प्रभाव कुछ अधिक पड़ने लगा । पहले दकनी कवियो की भाषा स्वच्छ सरल तथा हिन्दी-संस्कृत बहुला थी जैसा कि हम बाबा फरीदुद्दीन, कबीर और मलिक मुहम्मद जायसी की भाषा को पाते हैं । लेकिन बाद में धीरे-धीरे इसमें फारसी शब्दों का आधिक्य होता गया जैसा कि हम सुलतान कुली कुतुबशाह तथा मुल्ला वजही की रचना में पाते हैं । हिन्दी अथवा भारतीय छन्दों का त्याग कर दकनी में धीरे-धीरे फारसी छन्दों का अनुकरण आरम्भ हुआ ; फारसी कविता का पूर्ण रूप से अनुकरण करने का प्रयत्न किया गया । सत्रहवीं शताब्दी के मध्य मे इसने एक नया रूप धारण कर लिया । यह बहुत कुछ फारसी अर्थात् मुसलमान भावों से अनुप्राणित हो उठी । ऐसी दशा में दकनी का उत्तर भारत के मुगल दरबार की बोलचाल की भाषा दिल्ली की खड़ी बोली से संस्पर्श हुआ जिसके फलस्वरूप दिल्ली की भाषा दकनी के मुसलमानी वातावरण में पड़ी । दिल्ली और उत्तर भारत के मुसलमानों के लिए दकनी का अनुकरण स्वाभाविक और अनिवार्य हो गया ।

तुर्क और ईरानी विजेतागण १०-१३ वीं शताब्दी में साधा-

रणतया भारतीय भाषा को हिन्दवी अथवा हिन्दी अर्थात् 'हिन्दुओं की भाषा' या हिन्दी अर्थात् भारत की भाषा कहते थे। पंजाब की बोलियाँ 'हिन्दवी' या 'हिन्दी' थीं, दिल्ली की बोली भी 'हिन्दवी' या हिन्दी' थी, साहित्यिक अपभ्रंश भी 'हिन्दवी' या 'हिन्दी' थी और परवर्ती काल में ब्रजभाषा को भी यही कहा गया। साधारणतः सिन्धु और पंचनद के प्रदेश, राजस्थान तथा गंगा एवं यमुना के प्रदेश व्यापक रूप से हिन्दी के क्षेत्र थे। १५-१८ वीं शताब्दी में साहित्यिक हिन्दवी या हिन्दी से ब्रजभाषा का ही तात्पर्य था। सत्रहवीं शताब्दी में अकबर ने पहले पहल दक्षिण भारत पर चढ़ाई की थी। उसने गुजरात, मालवा, खानदेश, अहमदनगर, बरार तथा गोंडवाना पर अधिकार कर लिया। दिल्ली-आगरा की 'हिन्दी' तथा दक्षिण में पहले ही से प्रतिष्ठापित उसकी बहन दकनी, इन दोनों का पारस्परिक संपर्क हुआ। ये दोनों वस्तुतः एक ही भाषा के किंचित् परिवर्तित दो रूप थे। तब दक्षिण के लोगों की परिचित 'मुसलमानी' या 'दकनी' से पार्थक्य प्रदर्शित करने के लिए सम्भवतः दक्षिण में ही १७ वीं शताब्दी के मध्य अथवा अन्त में नवागत मुगल बादशाह की फौज में इस नवागत भाषा का नाम 'जबाने उर्दुए-मुअल्ला' अर्थात् 'महान राज-शिविर की भाषा' पड़ा। इस वर्णनात्मक नाम के साथ ही उत्तर की भाषा का एक और नाम 'हिन्दोस्तानी' अर्थात् 'हिन्दुस्थान या उत्तर भारत की भाषा' सम्भवतः दक्षिण में ही प्रचलित हुआ। अठारहवीं शताब्दी के मध्य भाग में पहले नाम का संक्षिप्त रूप 'ज़बाने उर्दू' सर्वप्रथम

व्यवहृत हुआ। बाद में और भी संक्षिप्त होकर यह उर्दू नाम से प्रचलित हुआ। तब फारसी अक्षरों में लिखित तथा फारसी की ओर झुकी हुई दिल्ली की 'हिन्दी' अथवा 'खड़ी बोली' ने अपना विशिष्ट पथ ग्रहण कर लिया था। सत्रहवीं शताब्दी तथा उसके पूर्व, उत्तर भारत में, अरबी-फारसी-शब्द-बहुल 'हिन्दी' या खड़ी बोली' को रेख्ता भी कहते थे। केवल 'उर्दू' यह नाम १८वीं शताब्दी के उत्तरार्ध तक अज्ञात था। जो कुछ भी हो 'दकनी' की देखादेखी, उत्तर भारत की रेख्ता 'हिन्दी'—दिल्ली की 'रेख्ता' खड़ी बोली—को मानो नई दिशा मिली। उत्तर भारत की रेख्ता-हिन्दी का व्यवहार करने वाले औरंगाबाद के कवि 'वली' 'दकनी' का आदर्श लेकर सन् १७२० में दिल्ली आकर रहने लगे। इसी समय से दिल्ली शहर में वास्तव में उर्दू साहित्य की प्रतिष्ठा या स्थापना हुई।

मुगल-सम्राट् तब तक भारतीय भाषा के, 'हिन्द्वी' या 'हिन्दी' भाषा के अर्थात् ब्रजभाषा के ही पृष्ठपोषक थे। वे स्वयं भी इसी ब्रजभाषा में रचना करते थे। औरंगजेब के समय में दिल्ली के मुगल दरबार के अमीरों की शिक्षा के लिए फारसी भाषा में ब्रज-भाषा के साहित्य अलंकार और व्याकरण पर पुस्तकें लिखी गईं, लेकिन १८वीं शताब्दी के दूसरे चरण से हवा का रुख बदला। यद्यपि ब्रजभाषा और ब्रजभाषा की कविता मुगल बादशाहों के हृदय की वस्तु थी तथापि वे और उनके दरबारी अमीर-उमरा ब्रजभाषा का परित्याग कर इस उदीयमान मुसलमानी भाषा की ओर झुके। कई कारणों से उर्दू की

स्थापना हुई थी, इनमें से निम्नलिखित कारण उल्लेखनीय हैं:—

१—मुगल दरबार के ऐसे अमीर-उमराओं के लिए जो घर में दिल्ली की बोली बोलते थे, ब्रजभाषा कुछ दूर को प्रादेशिक भाषा बनती जा रही थी। ब्रजभाषा का केन्द्र मथुरा, ब्रजमंडल तथा ग्वालियर था, इसी लिए कभी-कभी इसे ग्वालियरी बोली भी कहा जाता था।

२—ब्रजभाषा का वातावरण हिन्दुत्व का था। अतएव वह अब अरबी-फारसी पढ़े मुसलमानों के लिए उतनी रोचक नहीं थी।

३—दकनी के प्रभाव से दिल्ली की ज़बान-ए-उर्दू-ए-मुअल्ला की उन्नति ने वहाँ के शिक्षित मुसलमानों को अपनी ओर आकृष्ट किया।

४—राष्ट्रीय जीवन में मुसलमानी राज-शक्ति का पतन हो जाने पर मुसलमानों के दिल की तसल्ली के लिए साहित्यिक जीवन में मुसलमानी भावों का आरोप अनिवार्य हो गया।

५—इसी समय दिल्ली के मुगल दरबार में कतिपय नवागत अभारतीय मुसलमानों का प्रभाव बढ़ा तथा पुराने भारतीय मुसलमान वंशों के प्रभुत्व का ह्रास हुआ। इसके परिणाम स्वरूप उर्दू भाषा की स्थापना हुई। इन नवागत विदेशी मुसलमानों ने, जो ब्रजभाषा तथा भारतीय संस्कृति से विमुख थे, अरबी-फारसी शब्द-मिश्रित, फारसी साहित्य का अनुकरण करने वाले, फारसी लिपि में लिखित, नव-स्थापित उर्दू साहित्य को ही अपनाया।

इस प्रकार अठारहवीं शताब्दी के द्वितीय चरण में उर्दू को

खड़ा करने के लिए सज्ञान प्रयत्न किया गया। इसी शताब्दी के मध्य भाग से दिल्ली की इस नवीन मुसलमानी साहित्यिक भाषा से 'भाका' या 'भाखा' अर्थात् 'भाषा' या विशुद्ध हिन्दी और संस्कृत के शब्दों को बहिष्कृत करने की प्रवृत्ति मुसलमान लेखकों और आलिमों में दिखलाई देने लगी। इसके लिए अंजुमनें [गोष्ठियाँ] बनीं। जो भारतीय शब्द उर्दू के लिए उपयुक्त नहीं समझे जाते थे, उन्हें ये निकाल देती थीं। उस समय देश के जिन विभिन्न स्थानों में उर्दू के केन्द्र बन रहे थे, वहाँ इस प्रकार के बहिष्कृत तथा शुद्ध अरबी-फारसी-उर्दू शब्दों के व्यवहार के सम्बन्ध में सूची भेजी जाती थी। इस तरह दिल्ली की खड़ी बोली से यथासंभव भारतीय शब्दों को निकाल कर उनकी जगह अरबी-फारसी शब्दों को रख कर उर्दू भाषा के निर्माण का सूत्रपात हुआ। अरबी वर्णमाला और अरबी-फारसी शब्दों के बाहुल्य तथा दिल्ली के कुलीन एवं शिक्षित मुसलमान-समाज की भाषा होने के कारण उत्तर भारत के समस्त नगरों में पेशावर तथा श्रीनगर और लाहौर से ढाका तक शरीफ तथा कुलीन मुसलमानों मे उर्दू की अनायास प्रतिष्ठा हो गई। अब केवल दिल्ली ही नहीं, दिल्ली के बाद लखनऊ और लाहौर, और उसके बाद इलाहाबाद, जौनपुर और पटना उर्दू के नवीन केन्द्र बने। कलकत्ता मे भी १९वीं शताब्दी के प्रारम्भ में फोर्ट विलियम कालेज में उर्दू की चर्चा तथा उर्दू गद्य साहित्य की स्थापना हुई। दिल्ली से आकर दक्षिण में बसे हुए निजामुलमुल्क आसफजाह द्वारा हैदराबाद राज्य की स्थापना के साथ-साथ हैदराबाद भी दिल्ली

की उर्दू का एक नया केन्द्र बन गया। इसके बाद धीरे-धीरे इसके प्रभाव से दक्षिण में 'दकनी' भाषा का साहित्यिक व्यवहार उठ गया। आजकल 'दकनी' उस अंचल के केवल पुराने मुसलमान वंशों या परिवारों की घरेलू भाषा है।

पश्चिमी हिन्दी प्रदेश और उत्तर भारत के अन्य प्रान्तों के हिन्दू १३वीं शताब्दी से ही दिल्ली की खड़ी बोली से परिचित हो रहे थे और यह खड़ी बोली ब्रजभाषा से मिश्रित होकर धीरे-धीरे साहित्य में प्रवेश कर रही थी। पन्द्रहवीं शताब्दी में कबीर की रचना में यह बात भली-भाँति दिखलाई पड़ती है। किन्तु अठारहवीं शताब्दी में जब हिन्दू लोगों ने भी खड़ी बोली में लिखना आरम्भ किया तब नितान्त स्वाभाविक रीति से ब्रज-भाषा और अवधी की तरह ही वे इसे भी देवनागरी अक्षरों में लिखने लगे। वे लोग इस में शुद्ध हिन्दी तथा संस्कृत शब्दों का प्रयोग करने लगे। अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में फारसी अक्षरों में लिखित अरबी-फारसी मिश्रित मुसलमानी उर्दू के साथ साथ देवनागरी लिपि में लिखित शुद्ध हिन्दी तथा संस्कृत शब्दों से पूर्ण खड़ी बोली का एक हिन्दू रूप भी खड़ा हो गया। इसके लिए पुराना नाम हिन्दी ही बना रहा। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में मौखिक खड़ी बोली अथवा चालू हिन्दी से इसका पार्थक्य सूचित करने के लिए अंगरेजी में इसे High Hindi अर्थात् साधु या साहित्यिक हिन्दी के नाम से अभिहित किया गया। इस साधु हिन्दी से जब जानबूझकर पंडिताऊ संस्कृत और विदेशी फारसी शब्दों

को निकाल कर उनके स्थान पर यथासम्भव केवल शुद्ध प्राकृत-जात हिन्दी शब्दों का प्रयोग किया जाता तब यह **ठेठ हिन्दी** कहलाती थी। किन्तु वह अविमिश्र शुद्ध प्राकृतजात हिन्दी शब्दों से पूर्ण ठेठ हिन्दी कहीं बोली नहीं जाती थी। या तो संस्कृत के या फारसी के कतिपय शब्दों का हिन्दी में आना अनिवार्य है। यह ठेठ हिन्दी वस्तुतः हिन्दी के ग्रामीण रूप का आदर्श है। इंशा अल्ला खाँ तथा पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय ने इस ठेठ हिन्दी में पुस्तकें लिखी हैं। इंशा अल्ला खाँ की 'रानी केतकी की कहानी' १८५२-५५ में तथा अयोध्यासिंह का 'ठेठ हिन्दी का ठाट' १८९९ और 'अधखिला फूल' १९०५ में प्रकाशित हुआ। संस्कृत अथवा फारसी शब्दों के व्यवहार के बिना इतनी लम्बी कहानी लिखना बँगला में अब सम्भव नहीं है। हिन्दी में यह इसलिए सम्भव हुआ है कि संस्कृत और फारसी के दबाव में पड़कर शुद्ध हिन्दी ने अपनी प्राण-शक्ति खो नहीं दी है। इसका ग्रामीण या अपना प्राकृतजात शब्द-भण्डार अभी भी जीवित या चालू है। पछाहीं अर्थात् उत्तर प्रदेश के पश्चिमी जिलों की बोल-चाल की भाषा के ग्रामीण शब्दों को हिन्दी में व्यवहार करना खटकता नहीं है।

सत्रहवीं शताब्दी के अंत से दिल्ली की खड़ी बोली—सृज्य-मान उर्दू तथा साधु हिन्दी—का एक और नाम दिखलाई पड़ा—'हिन्दोस्तानी' या 'हिन्दुस्तानी' अर्थात् हिन्दुस्तान या 'हिन्दु-स्थान'—उत्तर भारत—की भाषा। ऐसा प्रतीत होता है कि यह नाम सर्वप्रथम दक्षिण में ही प्रयुक्त हुआ था। हिन्दुस्तान या

हिन्दुस्थान अर्थात् उत्तरापथ या उत्तर भारत और दक्खिन, दक्कन या दकन अर्थात् दक्षिणापथ या दक्षिणात्य, भारत के दो प्राकृतिक और प्राचीन विभागों के ये दो नये नाम मुगल शासन काल में दिखाई पड़े। दक्षिण के लोगों के लिए 'हिन्दुस्तान' या उत्तर की भाषा जो दक्षिण में मुगल लश्कर के साथ नये सिरे से १७ वीं शताब्दी में जा पहुँची थी, उसका नाम तो हिन्दुस्तानी होना ही था। सूरत के डचों या ओलन्देज़ों तथा अन्य विदेशियों ने भी इस भाषा को 'हिन्दोस्तानी' कहना शुरू किया। १६१५ ई० में डच ईस्ट इंडिया कम्पनी के एक कर्मचारी J. J. Ketelaer, केटल्यार ने डच भाषा में इस दिल्ली की खड़ी बोली 'इन्दोस्तानी' (Indostani) का एक व्याकरण लिखा; १६४३ में इसका लातीनी अनुवाद हालैण्ड से प्रकाशित हुआ।

'हिन्दोस्तान' या 'हिन्दुस्तान' नाम फारसी है; किन्तु शीघ्र ही इस नाम का भारतीयकरण कर लिया गया—फारसी 'अस्तान' 'इस्तान' या 'स्तान' शब्द के स्थान पर उसके भारतीय (संस्कृत) प्रतिरूप 'स्थान' का व्यवहार करके। 'राजस्थान', 'देवस्थान' आदि शब्दों के साथ हिन्दुस्थान ने सहज ही में अपना स्थान बना लिया। फारसी के कतिपय और देशवाचक नामों को भी इसी प्रकार भारतीय बना लिया गया। जैसे—तुर्किस्तान, बलोचिस्तान, अफगानिस्तान, यूनानिस्तान, अरबिस्तान, बालतिस्तान, कोहिस्तान आदि से तुर्किस्थान, बलोचिस्थान, अफगानिस्थान, यूनानिस्थान, अरबिस्थान, बालतिस्थान, कोहिस्थान आदि। 'स्थान'-युक्त भारतीय रूप हिन्दुस्थान, उत्तर भारत विशेषतया राज-

पूताना, मध्य भारत, मध्य प्रदेश और बिहार की लचाल कीबो भाषा में प्रचलित है। उत्तर प्रदेश और पंजाब में अधिकांश लोग—विशेषतः हिन्दू—हिन्दुस्थानी शब्द का ही प्रयोग करते हैं। [बिहार, नेपाल और अन्यत्र भी अशिक्षित जनसाधारण के मुख से इसका अपभ्रष्ट रूप 'हिनूथानी' या 'हिनूतानी' भी प्रायः सुन पड़ता है], किन्तु फारसी और उर्दू में लिखित 'हिन्दोस्तान' या 'हिन्दुस्तान' देवनागरी में 'हिन्दुस्तान' ही लिखा जाता है। हिन्दी उर्दू को छोड़कर मराठी, गुजराती, बँगला, उड़िया, आसामी, और नेपाली में केवल 'हिन्दुस्थानी—हिन्दुस्थान' रूप ही प्रयुक्त होता है; और दक्षिण भारत की तेलगू, कन्नड़ और मलयालम लिपि में भी यही 'स्थान' युक्त भारतीय रूप प्रचलित है; तमिल में "थ" वर्ण नहीं है; वहाँ त, थ, द, ध, इन चार वर्णों के स्थान पर "त" का ही व्यवहार होता है। अतएव बाध्य होकर इसमें "त" लिखना ही पड़ता है। व्यावहारिक दृष्टि से विचार करके देखने पर कहना पड़ता है कि फारसी रूप 'हिन्दुस्तानी' कहने से फारसी-अरबी-युक्त बोलचाल की उर्दू की गंध सी आती है और 'हिन्दुस्थानी' कहने पर तनिक संस्कृत और ठेठ देशी हिन्दी शब्द बहुला बोलचाल को नागरी हिन्दी का बोध होता है।

कुछ भी हो, दिल्ली की यह खड़ी बोली, हिन्दुस्तानी या हिन्दुस्थानी अथवा ठेठ हिन्दी, किताबी एवं मजलिसी साधु हिन्दी, और उर्दू के अतिरिक्त उत्तर भारत की हिन्दू और मुसलमान जनता में बातचीत की भाषा के रूप में, कम से कम सत्रहवीं

शताब्दी के उत्तरार्ध से प्रचलित है और जैसे-जैसे यह अपनी जन्म-भूमि दिल्ली तथा उत्तर प्रदेश के पश्चिमी भाग से चारों ओर फैलने लगी, वैसे-वैसे अहिन्दी भाषियों के हाथों में पड़कर इसके व्याकरण की बारीकियाँ परिवर्तित तथा संक्षिप्त होने लगीं। इस मौखिक खड़ी बोली या हिन्दुस्थानी का व्यवहार-क्षेत्र मुख्यतः सहज, सरल, दैनिक घरेलू जीवन की बातें होने के कारण इसमें उच्च भावों के शब्दों का उतना समावेश नहीं है। इसीलिए यह बोलचाल की भाषा बहुत कुछ मध्यम मार्ग को अपना कर चलती आई है। न तो शिक्षित हिन्दू पंडितों द्वारा व्यवहृत संस्कृत शब्दों के बाहुल्य को ही इसमें स्थान है और न मुसलमान आलिमों द्वारा व्यवहृत उच्च कोटि के अरबी-फारसी शब्दों का प्राचुर्य ही इसमें होने पाता है। चूँकि यह खड़ी बोली या हिन्दुस्थानी अठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दी में दिल्ली के मुसलमानी दरबार और कचहरियों में गढ़ी जा रही थी, इसलिए इसमें साधारण पदार्थों के नामों और क्रियाओं तक में भी फारसी-अरबी शब्दों की अधिकता देखी जाती है। बातचीत की हिन्दुस्थानी में नितान्त साधारण तथा चालू फारसी शब्दों के इस तरह से कुछ अधिक आ जाने के कारण अनेक मुसलमान तथा अधिकांश अंग्रेज एवं अन्य यूरोप-निवासी बोलचाल की 'हिन्दुस्तानी' (हिन्दुस्थानी) तथा फारसी-अरबी-शब्दबहुला उर्दू को एक ही समझते हैं। पहले 'ऑल इण्डिया रेडियो' से हिन्दुस्तानी के नाम से जिस भाषा में समाचार तथा भाषण दिये जाते थे वह विशुद्ध उर्दू के अति-

रिक्त दूसरी कुछ न थी। इस प्रकार जनसाधारण में व्यवहृत 'चालू हिन्दुस्तानी' के नाम पर सम्प्रदाय विशेष में सीमित मुसलमानी उर्दू के व्यवहार के विरुद्ध उत्तर भारत के 'हिन्दी-प्रेमी' बहुत दिनों से प्रतिवाद करते आ रहे थे, किन्तु भारत के नये विधान में राष्ट्रभाषा हिन्दी तथा राष्ट्रलिपि देवनागरी हो जाने के कारण अब स्थिति बिलकुल बदल गई है।

भारत की समस्त आर्य और द्राविड़ भाषाओं की भाँति हिन्दी या हिन्दुस्थानी परवश तथा पराश्रयी भाषा है, आत्म-केन्द्री अथवा आत्मवश भाषा नहीं, अर्थात् वह अपने धातु-प्रत्ययों के सहारे नये शब्दों को प्रायः नहीं गढ़ना चाहती अथवा गढ़ पाती। आवश्यकतानुसार वह किसी अन्य भाषा से नवीन शब्दों को उधार ले लेती है। आधुनिक भारतीय भाषाएँ अब शब्दों को उधार लेने वाली भाषायें (borrowing languages) बन गई हैं, स्वतः शब्द-निर्माण करने वाली (building languages) नहीं हैं। इस प्रकार की परवश भाषा का एक दूसरा उदाहरण है, अंग्रेजी; विशुद्ध अंग्रेजी शब्द-धातु-प्रत्यय जोड़कर अब वह प्रायः नये शब्दों को नहीं गढ़ पाती, पग-पग पर उसे फ्रांसीसी, लातीनी तथा ग्रीक का दरवाजा खटखटाना पड़ता है। जापानी भाषा भी उसी प्रकार चीनी की कृपा पर निर्भर है। जापानी लोग किसी भी चीनी शब्द को सानन्द स्वीकार कर लेते हैं। उनकी अपनी भाषा में नये शब्द गढ़ने की शक्ति अब नहीं है। आत्मवश भाषाओं (building languages) में जर्मन का नाम लिया जा सकता है। ईरान की ईरानी या

फारसी भाषा गत बारह तेरह सौ वर्षों से अरबी की कृपा पर निर्भर थी। अब ईरानियों मे नये सिरे से आर्य-जातीयता का भाव उत्पन्न होने से फारसी भाषा अरबी शब्दों का बहिष्कार करके फिर शुद्ध आर्य भाषा बनना चाहती है। संस्कृत हिन्दी आदि नवीन भारतीय आर्य-भाषाओं की मातामही स्थानीया है। आरम्भ से ही अत्यन्त स्वाभाविक और अनिवार्य रूप से अपने शब्द-भांडार का दूध पिलाकर आधुनिक भारतीय भाषाओं को वह पुष्ट करती आ रही है; जैसे लातीनी भाषा अपनी दुहितृ-स्थानीय फ्रांसीसी, इतालीय आदि भाषाओं को करती आ रही है। किन्तु भारतवर्ष में जब पहले अरब और बाद में तुर्क और ईरानी जातीय विदेशी और पठान मुसलमान देश के राजा बन बैठे तो उनमें विजित तथा विधर्मी हिन्दू प्रजा की प्राचीन भाषा संस्कृत के प्रति किसी प्रकार का कौतूहल या सहानुभूति दिखलाई देना सम्भव न था। संस्कृत से उनका कोई संबंध न था। प्रथम युग के विजेता के दर्प में उस ओर कृपा-दृष्टि करने की गरज भी उन्हें न थी। फारसी ही उनकी परिचित इस्लामी भाषा थी (पहले अरब मुसलमान विजेता और मुसलमानों के धर्म-पंडित अवश्य अरबी को ही पहला स्थान देते थे) —फारसी की अरबी लिपि तथा फारसी के प्रचुर अरबी शब्द तथा फारसी की बढ़ती हुई साहित्य-सम्पदा उनके लिए धर्म और संस्कृति दोनों दृष्टियों से आदर की वस्तु थी। जो भारतीय हिन्दू, बौद्ध और जैन मुसलमान हुए, धर्म के नाम पर उनमें से अनेकों के हृदय में फारसी और अरबी के

प्रति धीरे-धीरे आकर्षण हो गया—विशेषकर मुसलमान राज-शक्ति तथा संस्कृति के केन्द्रों में। संस्कृत के पठन-पाठन के अभाव में धीरे-धीरे ये लोग संस्कृत की माया से मुक्त होने लगे। उनमें से कोई-कोई संस्कृत के स्थान पर फारसी को स्थापित करने की चेष्टा में लग गये। किन्तु कई शताब्दियों तक संस्कृत और देश-भाषा शुद्ध हिन्दी का प्रभाव अव्याहत रहा; धीरे-धीरे दक्षिण में सोलहवीं शताब्दी के अन्त में और उत्तर भारत में अठारहवीं शताब्दी के मध्य भाग में मुसलमानों में अरबी-शब्द-बहुला फारसी ने संस्कृत का आसन प्रायः पूर्णरूप से दखल कर लिया। किन्तु उत्तर भारत के मुसलमानों के लिए भी देश भाषा अथवा मातृभाषा को विदेशी भाषा का मुखापेक्षी करना आसान न था। इस कार्य में कई शताब्दियाँ लग गई थीं और इस विषय में अठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दी में साकांक्ष्य चेष्टा भी दिखलाई दी थी। विदेशी और विदेशागत मुसलमानों के नेतृत्व में जब यह कार्य दिल्ली में बहुत कुछ अग्रसर हो गया तब मुसलमान शाही-दरबार के कारबार में नियुक्त उत्तर भारत के कायस्थों की तरह हिन्दुओं में से अनेकों ने पहले अपने कारबारी जीवन में और बाद में अपने सांस्कृतिक जीवन में भी संस्कृत के बदले फारसी को स्वीकार कर लिया।

इसका परिणाम यह हुआ कि एक ही भाषा से गत दो तीन सौ वर्षों में दो साहित्यिक भाषाओं की उत्पत्ति हुई; लिपि तथा उच्च कोटि के शब्दों के ग्रहण में इन दोनों ने सर्वथा विभिन्न

मार्गों का अनुसरण किया। कलकत्ता नगर में अंग्रेजों के तत्त्वावधान में उन्नीसवीं शताब्दी के प्रथम पाद से ही जब इन दोनों भाषाओं में गद्य-साहित्य-रचना की चेष्टा हुई और उसके कुछ काल अनन्तर जब ये दोनों भाषाएँ शिक्षा तथा बाह्य जीवन अथवा कर्म-क्षेत्र में व्यवहृत होने लगीं, तभी से इन दोनों में अवश्यम्भावी प्रतिद्वन्द्विता दिखलाई पड़ी। भारत के राजनैतिक आन्दोलन में धीरे-धीरे वह जन-समूह दिखलाई पड़ा जो हिन्दी और उर्दू को साहित्य, शिक्षा और कर्मक्षेत्र में व्यवहार करता था; और दूसरी ओर भारत की राजनीति तथा जीवन के प्रायः प्रत्येक क्षेत्र में अत्यन्त कुत्सित रूप में हिन्दू-मुस्लिम-समस्या प्रकट हुई। हिन्दी और उर्दू का विवाद, जो मुख्य रूप से भाषा की रचना-शैली का साहित्यिक विवाद-मात्र रहना चाहिये था, परस्पर विरोधी रूप में खड़े किये गये हिन्दू और मुसलमान धर्म तथा संस्कृति के विनाशकारी संग्राम के प्रतीक रूप में स्थापित हो गया। इस समय हिन्दी और उर्दू स्वेच्छा से स्वीकृत दो विभिन्न मार्गों पर चल रही हैं; उर्दू के पक्ष में उग्र रूप से फारसी-अरबी शब्दों का ग्रहण और यथासम्भव देशी शब्दों का भी बहिष्कार करके इन सब विदेशी शब्दों का प्रयोग हो रहा है और हिन्दी के पक्ष में उसी प्रकार अरबी-फारसी शब्दों के बहिष्कार की चेष्टा और संस्कृत शब्दों का ग्रहण हो रहा है। इसका परिणाम यह होगा कि उर्दू वाले तथाकथित उच्च कोटि अथवा उच्च शैली की हिन्दी को नहीं समझेंगे और हिन्दी वाले भी उसी प्रकार की उच्च शैली की उर्दू को नहीं समझेंगे; यद्यपि

दोनों भाषाओं का सरल रूप इन दोनों प्रकार के लोगों की भाषा की आधारभूमि है। तो भी यह कहना ही पड़ेगा कि हिन्दी में जिस परिमाण में प्रचलित अरबी-फारसी के शब्दों का व्यवहार होता है, उर्दू में उसके शतांश संस्कृत शब्दों का भी व्यवहार नहीं होता। अठारहवीं शताब्दी के मध्य भाग से ही उर्दू में संस्कृत शब्दों के बहिष्कार की जो धारा प्रवाहित हुई थी वह अब भी अबाध गति से चल रही है; उर्दू इस विषय मे हिन्दी के समान उदार नहीं है। इस सम्बन्ध में यह बात भी उल्लेखनीय है कि समस्त उत्तर भारत में प्रचलित होने के कारण ही साधु हिन्दी में संस्कृत शब्दों का बाहुल्य हो रहा है; राजस्थान, पंजाब उत्तर प्रदेश के पूर्वी भाग, मध्य भारत तथा बिहार के हिन्दी-लेखक-गण उत्तर प्रदेश के पश्चिम भाग तथा दिल्ली की शुद्ध खड़ी बोली द्वारा अनुमोदित देशी या ठेठ हिन्दी के शब्दो का प्रयोग करना नहीं जानते, इसीलिए इन लोगों की हिन्दी में संस्कृत शब्द अनिवार्य रूप से आ जाते हैं—प्रादेशिक भाषा के अन्तर्प्रादेशिक हो जाने के कारण इसकी अपनी विशेषता की रक्षा नहीं हो पा रही है, सब के लिए बोधगम्य तथा सब के द्वारा व्यवहृत संस्कृत शब्द इसमें आये बिना रह नहीं पा रहे हैं।

खड़ी बोली और हिन्दी के अपने क्षेत्र, पूर्व पंजाब तथा उत्तर प्रदेश के पश्चिमी भाग, के बाहर जो आर्य-भाषा-भाषी रहते हैं और "हिन्दी प्रान्त" अर्थात् जिस विराट् भूखण्ड में हिन्दी तथा उर्दू साहित्यिक भाषा के रूप में स्वीकृत हुई हैं उस

भूखण्ड के (अर्थात् पश्चिम पंजाब से बिहार के पूर्वी छोर तक) जिन व्यक्तियों ने शुद्ध व्याकरण-सम्मत उर्दू तथा हिन्दी की शिक्षा नहीं पाई है वे तथा द्राविड़भाषी एवं कोलभाषी गण, पठान, अंग्रेज तथा दूसरे योरोपीय लोग, एवं भोट-चीनी आदि विदेशी गण, अन्तर्प्रान्तीय बोलचाल की भाषा के रूप में दैनिक कार्यों में जब हिन्दी या हिन्दुस्थानी भाषा का व्यवहार करते हैं, तब वे भी इस भाषा—खड़ी बोली—को बहुत कुछ काट छाँट कर संक्षिप्त करके व्यवहार करते है; खड़ी बोली (हिन्दी या हिन्दुस्थानी) के व्याकरण के अनेक कठिन प्रयोगों को वे सर्वथा छोड़े देते हैं (जैसे—विशेष्य, विशेषण तथा क्रिया में स्त्रीप्रत्यय, प्रत्ययों के परिवर्तन द्वारा बहुवचन का निर्देश, भूतकाल में सकर्मक क्रिया का कर्म के साथ मेल); एवं विभिन्न प्रदेशों की स्थानीय भाषाओं की शब्दावली तथा विशिष्टता के द्वारा इस प्रकार की टूटी-फूटी हिन्दी अनेक भाँति से प्रभावित होती है। इस प्रकार की सहज या टूटी-फूटी हिन्दी के कई नाम हैं: बाजारी या बाजारू हिन्दी (हिन्दुस्थानी); चलतू या चालू हिन्दी (हिन्दुस्थानी); सहज, सरल, अनपढ़ या सीधी हिन्दी (हिन्दुस्थानी); टूटी-फूटी हिन्दी; लघु हिन्दी आदि। अंग्रेजी में इसे Basic Hindi (Hindustani) भी कहा गया है; एवं उत्तर भारत से आकर दक्षिण में बसे हुए मुसलमानों में इस प्रकार की टूटी-फूटी हिन्दुस्थानी का अधिक प्रचार होने के कारण इस भाग में उसे बहुधा मुसलमानी भी कहा जाता है। वही 'बाजारी' या 'सीधी' या 'सरल' हिन्दी

निखिल भारत की वास्तविक अन्तर्प्रादेशिक राष्ट्रभाषा है, शुद्ध, साधु हिन्दी अथवा किताबी उर्दू नहीं; एवं यही भाषा पश्चिमी हिन्दी प्रान्त के बाहर हमारे बहुभाषी नगरों में प्रवर्धमान जनसमूह में घरेलू भाषा के रूप में प्रतिष्ठित हो रही है।

---

[५] बातचीत की भाषा तथा संस्कृतिवाहिनी भाषा—भारत में अंग्रेजी भाषा का स्थान

इस बहुरूपिणी हिन्दी भाषा का समग्र भारत में जो प्रसार तथा प्राधान्य हुआ है वह सज्ञान तथा सचेष्ट प्रचार-कार्य का फल नहीं है, एवं यह केवल कतिपय अप्रधान या गौण घटनाओं के संयोग का परिणाम-मात्र भी नहीं है। आदि भारतीय आर्य-युग से, अर्थात् वैदिक युग के बाद से, प्राचीन काल में उत्तर भारत के जिस भाग को 'मध्य देश' कहा जाता था (अर्थात् आजकल का पूर्वी पंजाब तथा उत्तर प्रदेश का पश्चिमी भाग), उसके सांस्कृतिक तथा राजनैतिक प्राधान्य के कारण ही प्रत्येक युग में वहाँ की भाषा का प्राधान्य रहा है। प्राचीन काल में यह मध्यदेश—कुरु पांचाल देश—आर्य भारत का हृदय तथा मस्तिष्क स्वरूप था; यहीं आर्य तथा अनार्य संस्कृतियों के मिलन तथा मिश्रण के फलस्वरूप वैदिक युग के बाद से ही प्राचीन ब्राह्मण अथवा हिन्दू सभ्यता का उद्भव हुआ, और इसी प्रदेश तथा इसके आस-पास की भाषा भिन्न-भिन्न युगों में संस्कृत, पाली* तथा शौरसेनी प्राकृत, शौरसेनी अपभ्रंश, ब्रजभाषा और अन्त में हिन्दी के रूप में अखिल-भारतीय आर्य जगत की सहज एवं स्वाभाविक अन्तर्प्रान्तीय भाषा के रूप में विराजमान

---

* पाली ईसा से पूर्व के मध्यदेश (मथुरा-उज्जयिनी अंचल)

रही है। प्राचीन हिन्दू सभ्यता या ब्राह्मण्यवाद की भाषा होने के कारण यहाँ की भाषा संस्कृत समस्त भारत में (और भारत के बाहर जहाँ-जहाँ हिन्दू सभ्यता गई वहाँ वहाँ) फैली और देवभाषा के आसन पर प्रतिष्ठित हुई। गुप्त सम्राटों के राजत्वकाल में मध्यदेश ही साम्राज्य का केन्द्र था। यहाँ की भाषा शौरसेनी प्राकृत को, ईसा के जन्म के समय से ही, संस्कृत नाटको में सर्वापेक्षा शिष्ट प्राकृत के रूप में ब्राह्मणेतर तथा नायकेतर उच्च-वर्ग के पात्र-पात्रियों की भाषा के रूप में व्यवहृत होते देखा जाता है। गुप्त साम्राज्य तथा हर्षवर्द्धन के साम्राज्य का अन्त हो जाने के पश्चात् उत्तर भारत में विभिन्न गोत्रों के राजपूत या क्षत्रिय राजाओं का युग आया और दक्षिणापथ तथा सिन्धु एवं पंजाब से लेकर बंगाल तक समस्त उत्तर भारत में राजपूत वंशीय राजाओं की सभाओं में, देवभाषा संस्कृत के बाद ही शौरसेनी अपभ्रंश का स्थान था। इस शौरसेनी अपभ्रंश में

में प्रचलित प्राकृत के आधार पर बनी साहित्यिक भाषा है, हीनयान मत के थेरवाद-सम्प्रदाय के बौद्धों का शास्त्र 'त्रिपिटक' इसी भाषा में लिखा गया है। इससे मगध की भाषा या बुद्धदेव की अपनी भाषा का कोई साक्षात् सम्बन्ध नहीं है;—सिंहल के भिक्षुओं ने प्राचीनकाल में भूल से पाली को 'मगध की भाषा'—मागधी समझा था, इसलिए पाली का सम्बन्ध उन्होंने मागधी प्राकृत से जोड़ा था। वस्तुतः हाल के अनुसंधानों से यह सिद्धान्त स्वीकृत हो रहा है कि पाली की उत्पत्ति मध्यदेश में हुई, मगध में नहीं।

पश्चिम भारत के जैनों ने विराट् साहित्य का निर्माण किया; ब्राह्मण्य साहित्य का प्रसार भी इसमें कुछ कम नहीं हुआ। दिल्ली के अन्तिम हिन्दू राजा पिथौरा या पृथ्वीराज चौहान के सभा-कवि चन्द्रवरदाई ने इसी शौरसेनी अपभ्रंश में ही अपना 'पृथ्वीराज रासो' महाकाव्य लिखा। महाराष्ट्र से बंगाल तक समस्त आर्य भारत में साधु या साहित्यिक भाषा के रूप में इस अपभ्रंश का प्रसार हुआ; बंगाल के कवियों ने भी प्राचीन बँगला में जिस प्रकार "चर्यापद" लिखा है, उसी प्रकार की मध्यदेश की भाषा, मानो एक प्रकार की प्राचीन हिन्दी, इसी शौरसेनी अपभ्रंश में भी दोहे तथा पद लिखे हैं। मथुरा प्रदेश की भाषा, ब्रजभाषा, प्रौढ़ साहित्य की भाषा थी। अतएव प्रथम मुसलमान युग में उसकी भी सर्वत्र स्थापना हुई। तानसेन आदि संगीतज्ञों तथा सूरदास प्रभृति कवियों के प्रभाव से इसकी थोड़ी बहुत चर्चा उत्तर भारत में सर्वत्र दिखलाई पड़ी; अठारहवी शताब्दी मे बंगाली कवि भारतचन्द्रराय गुणाकर ने भी इस ब्रजभाषा में पद लिखे हैं (उनके 'अन्नदामंगल' और 'विद्यासुन्दर' में हमें यह बात मिलती है)। मुगल-शासन के अन्त में ब्रजभाषा के साथ-साथ, दिल्ली शहर की खड़ी बोली अथवा हिन्दी-हिन्दुस्थानी, शासक वर्ग की भाषा होने के कारण, शिष्ट-भाषा बन गई और मुगल-सम्राटों के अधीन समस्त सूबों अथवा प्रदेशों में केन्द्रीय भाषा के रूप में इसने अपना दृढ़ स्थान बना लिया।

मध्य देश की हिन्दी-हिन्दुस्थानी, आजकल बंगाली, आसामी, उड़िया, मराठे, गुजराती, सिन्धी तथा नेपालियों के

लिए शिक्षा अथवा संस्कृतिवाहिनी भाषा नहीं है ; द्रविड़-भाषी तेलगु कन्नड़, तमिल, मलयालियों के लिए भी नहीं; किन्तु अपने सरल 'बाजारी हिन्दी' रूप में यह बहुत बड़ी मेलजोल की भाषा है। साधु हिन्दी और उर्दू निश्चित रूप से पंजाबी, राजस्थानी, बिहारी, मध्य भारत तथा उत्तर प्रदेश के लोगों में शिक्षा तथा संस्कृति की भाषा के रूप में व्यवहृत होती हैं। इसके अतिरिक्त, पंजाबी, राजस्थानी, कोशली, भोजपुरी, मगही, मैथिली, गढ़वाली आदि जो प्रादेशिक भाषायें हिन्दी की लपेट में आई हैं, उनके समस्त प्राचीन साहित्यिक जीवन का अन्त हो गया है या हो रहा है, वे मानो हिन्दी में ही समाहित हो गई हैं। खड़ी बोली या हिन्दुस्थानी के दबाव से ब्रजभाषा की जैसी अवस्था हो गई है, इनकी अवस्था भी उसी तरह की है। लगभग चौदह करोड़ लोगों की साधारण शिक्षा का कार्य हिन्दी तथा (उर्दू) के माध्यम से चल रहा है, किन्तु उच्च संस्कृति के लिए समस्त भारत की जनता संस्कृत, फारसी या अरबी की सहायता लेती है अथवा अंग्रेजी की शरणापन्न होती है।

आधुनिक भारत में अंग्रेजी का अति विशिष्ट स्थान बन गया है। एक तो यह भारत को राजभाषा है, शासनतन्त्र में इसका अत्यधिक प्रचार तथा एकच्छत्र आधिपत्य है; इसके अतिरिक्त यह उच्चशिक्षा की भाषा है, इसीलिए भारत के आधुनिक शिक्षित लोगों के मन पर और उनकी भाषा पर यह अत्यधिक प्रभाव फैला रही है—भारतीय भाषाओं के आधुनिक साहित्य को इसने अभूतपूर्व रूप से अनुप्राणित

किया है। अंग्रेजी या यूरोपीय विचार-प्रणाली, अंग्रेजी वाक्य-भंगी तथा शब्द—ये सभी भारतीय भाषाओं में एक साथ प्रवेश कर रहे हैं। पराधीन भारत के रुद्ध तथा संकीर्ण जीवन-क्षेत्र में बाह्य जगत से जो प्रकाश आ रहा है उसका मुख्य वातायन इस समय अंग्रेजी भाषा ही है। भारत में सर्वापेक्षा व्यापक रूप से प्रचलित विदेशी भाषा एक मात्र अंग्रेजी है—१९३१ ई० में ३३ करोड़ ८० लाख भारतवासियों में २ करोड़ ८० लाख साक्षर व्यक्ति थे, इनमें ३५ लाख अंग्रेजी से परिचित थे। १९४१ ई० में अंग्रेजी जानने वालों की संख्या का अनुपात अवश्य ही बढ़ गया होगा। १९४१ में साक्षर भारतवासियों की संख्या ४ करोड़ ७० लाख से ऊपर थी। इसके अतिरिक्त भारत मे ३ लाख १९ हजार से ऊपर लोग घर में अंग्रेजी बोला करते हैं—ये हैं भारत में रहने वाले अंग्रेजी भाषी, यूरोपीय या फिरंगी एवं अल्प संख्यक भारतीय ईसाई, जिन्होंने सब प्रकार से अंग्रेजी रहन-सहन एवं संस्कृति को अपना लिया है। अंग्रेजी की प्रधानता के सम्बन्ध में अधिक आलोचना की आवश्यकता नहीं। ब्रिटेन अर्थात् इंगलैंड, वेल्स तथा स्काटलैंड में और आयरलैंड में, संयुक्तराष्ट्र अमेरिका तथा कनाडा मे, दक्षिणी अफ्रीका में, आस्ट्रेलिया में तथा अन्यत्र अंग्रेजी लगभग २० करोड़ लोगों की मातृ-भाषा है; इसके अतिरिक्त यह ब्रिटिश साम्राज्य के लगभग ५० करोड़ और संयुक्त-राष्ट्र अमेरिका के अधीन १४ करोड़ लोगों की राजभाषा है; और भी चीन, जापान एवं चारों महाद्वीपों के भिन्न-भिन्न

स्वतन्त्र राष्ट्रों में लाखों व्यक्ति संस्कृतिवाहिनी भाषा के रूप में अंग्रेजी पढ़ा करते हैं। अंग्रेजी आज विश्व-संस्कृति की—समस्त मानव जाति की सम्मिलित चेष्टा से सृष्ट आधुनिक सभ्यता की सर्वप्रधान वाहिनी या माध्यम है। भारतवर्ष के बुद्धिजीवी शिक्षित व्यक्तियों में अंग्रेजी द्वितीय मातृभाषा का स्थान बना चुकी है; कितने ही स्थलों पर तो शिक्षित समाज के मानसिक तथा आध्यात्मिक विकास के लिए अन्य किसी भाषा की अपेक्षा अंग्रेजी ही अधिक उपयोगी तथा कार्यकर बन गई है। अंग्रेजी की कृपा से ही हमारे ज्ञान-विज्ञान एवं साहित्य, इतिहास आदि का अनुशीलन और भी व्यापक एवं गम्भीर हो सका है, हमारे राष्ट्रीय तथा आर्थिक स्वाधीनता के आन्दोलन में इसकी सहायता अमूल्य रही है। हम अपनी गरज़ से ही आज अंग्रेजी का बहिष्कार नहीं कर सकते। अध्ययन-क्रम में प्रथम स्थान मातृभाषा अथवा उसकी स्थानीया किसी बड़ी साहित्यिक भाषा का आता है, इसके बाद ही अपनी शिक्षा प्रणाली में हमें अंग्रेजी को स्थान देना पड़ता है। भविष्य में राजनैतिक अथवा शासन-सम्बन्धी कार्यों में अंग्रेजी की प्रधानता जब समाप्त हो जायगी तब भी हमें सांस्कृतिक कारणों से उसे रखना ही होगा।

भारतवासियों में से अनेक व्यक्ति अन्तर्प्रान्तीय एवं राष्ट्रीय या जातीय भाषा के रूप में अंग्रेजी को ही स्वीकार करने का अनुमोदन करते हैं। किन्तु मेरा विचार है कि यह पूर्णतया सम्भव नहीं है। भारत के निवासियों में केवल

एक प्रतिशत से कुछ ही अधिक लोग अंग्रेजी जानते हैं। जनता के मनोभाव एवं कार्य-प्रणाली दोनों ही इस समय अंग्रेजी को व्यापक रूप से राष्ट्रभाषा अथवा अंतर्प्रान्तीय भाषा के रूप में ग्रहण करने के विपक्ष में हैं। जन साधारण में से अधिकांश लोग उच्चशिक्षा की ओर नहीं जायँगे--उसके लिए मानसिक अधिकार एवं प्रवृत्ति (तथा सुविधा भी) अल्प-संख्यक लोगों में ही है। इन अधिकांश लोगों को अंग्रेजी-भाषी बनाने के लिए अंग्रेजी पढ़ाने की चेष्टा करना केवल समय, श्रम तथा धन का अपव्यय करना होगा, किन्तु अंतर्प्रान्तीय व्यवहार के लिए, इस समय जैसा होता है, इनके लिए, हिन्दी [हिन्दुस्तानी] सीख लेना अत्यन्त सरल है। नीची कक्षाओं के छात्रों के लिए अंग्रेजी शिक्षा की आवश्यकता नहीं है किन्तु ऊपर की श्रेणियों में अंग्रेजी को अनिवार्य किया जा सकता है; इसके साथ ही अंग्रेजी पढ़ाने की ऐसी आधुनिक प्रणाली का अवलंबन करना चाहिए जिससे जीवित भाषा के रूप में उसका अध्ययन हो और छात्र-छात्रियाँ अंग्रेजी का व्यावहारिक ज्ञान शीघ्र प्राप्त कर लें, जिससे उसकी सहायता से विज्ञान तथा उद्योग सम्बन्धी शिक्षा एवं गवेषणा का पथ यथासम्भव शीघ्र उन्मुक्त हो सके। साधारण बालक-बालिकाओं को उनकी मातृभाषा अथवा उसकी स्थानीया किसी बड़ी साहित्यिक भाषा के माध्यम से शिक्षा देने से उनकी मानसिक शक्ति का पूर्ण उन्मेष सहज ही हो सकेगा। आरम्भ से ही अंग्रेजी पर अधिक जोर देने से भारतीयों के लिए दुरूह इस

भाषा पर अधिकार करते-करते उनकी शक्ति का अधिक भाग नष्ट हो जायगा। तथापि स्कूल की ऊँची कक्षाओं में अंग्रेजी-शिक्षा का द्वार सब के लिए खुला रखना उचित होगा।
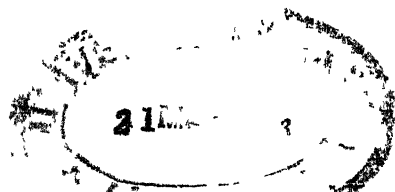
[६] अखिल भारतीय राष्ट्रभाषा अथवा जातीय भाषा की आवश्यकता

मेरा विचार है कि इस प्रकार की एक राष्ट्रभाषा की सचमुच आवश्यकता है। अंग्रेजी के स्थान पर किसी भारतीय भाषा को समस्त भारत की राष्ट्रभाषा के रूप में स्थापित करना जनता के समय तथा शक्ति को नष्ट करने वाला केवल अनावश्यक अलंकार न होगा। भारतीय राष्ट्र की एकता की प्रतीक स्वरूप एक ऐसी भारतीय भाषा की हमें आवश्यकता है जिसे सर्वापेक्षा अधिकसंख्यक भारतवासी सहज ही में समझ सकें तथा व्यवहार कर सकें। यदि इस भाषा से अधिक परिचय करा दिया जाय तो समग्र भारत की जनता अब द्वितीय भाषा की सहायता के बिना केवल इस भाषा के द्वारा समस्त राजकार्य चला सकेगी। सयुक्त-राष्ट्र-मूलक भारत की भावी स्वतन्त्रता के युग में भाषा के आधार पर जो प्रान्तीय राज्य स्थापित होंगे उनके कारण अनेक प्रकार की विकेन्द्रीकरण की शक्तियाँ काम करेंगी, ये सब शक्तियाँ प्रबल होकर अखिलभारतीय एकता के लिए हानिकर होंगी, ऐसी आशंका है; इस बात को सभी स्वीकार करेंगे कि इस प्रकार की विकेन्द्रीकरण की शक्तियों के अन्यतम प्रतिरोधक के रूप में एक अखिलभारतीय सर्वजन-बोध-गम्य राष्ट्रभाषा की विशेष आवश्यकता है। भारत के भौगोलिक

संस्थान, इसकी प्राकृतिक और अर्थ-नैतिक सीमाएँ, इसकी एक सूत्र में आबद्ध संस्कृति—इन सब के संयोग से भारत में जो एकता खड़ी हो गई है, उसे विच्छिन्न और खंडित करने के लिए अनेक दिशाओं से सज्ञान अथवा अज्ञान प्रयास दिखाई पड़ेंगे। इस प्रकार के प्रयास को विफल करने के लिए भारत में कई केन्द्रीय तथा केन्द्राभिमुखी शक्तियाँ अत्यावश्यक होंगी; इस प्रकार की शक्तियो में सर्वप्रथम एक अखिल भारतीय सर्वजन-बोधगम्य राष्ट्रभाषा स्थापित हो सके, ऐसी चेष्टा करनी चाहिए। यह विचारणीय है कि पृथक् प्रान्तीय स्वतन्त्रता और विश्व-भारतीय या निखिल भारतीय एकता में से कौन समग्र भारत के लिए अधिक कल्याणप्रद है। इतिहास के अनुशीलन से यह स्पष्ट हो जाता है कि सब कालों में केन्द्रीय शक्ति के परिपुष्ट होने के साथ ही भारत में संस्कृति और राष्ट्र-शक्ति के विकास में बहुत गौरव-पूर्ण युग आया है;—जैसे मौर्य-युग में, गुप्त साम्राज्य में, पल्लवों के राज्य में, हर्षवर्धन के समय, मुगलों के राजत्वकाल मे। इस कारण शासन तथा शिक्षा सम्बन्धी प्रधान व्यवस्थाओं को अखिल भारतीय रूप में प्रतिष्ठापित करना ही उचित होगा—बहुत कुछ आजकल के साम्राज्य (इंपीरियल) अर्थात् अखिल भारतीय या अन्त-र्प्रादेशिक राष्ट्र-संचालन-विभागों की भाँति; परन्तु भविष्य में अखिलभारतीय शासन-विभागों में कर्मचारियों की एक प्रान्त से दूसरे प्रान्त में बदली और भी आवश्यक हो जायगी। अखिल भारतीय एकमात्र सैन्यदल, एकमात्र उच्च-

राष्ट्र-संचालन-विभाग तथा शान्तिरक्षक पुलिस-विभाग, एक मात्र शिक्षा-परिपाटी एवं अखिल भारतीय शासन-परिषद् के रूप में एक मात्रचरम केन्द्रीय राष्ट्र-परिषद् के न होने से अखिल भारतीय एकता का संरक्षण तथा परिपोषण होना कठिन है। कल्पना एवं कार्यप्रणाली दोनों दृष्टियों से विचार करने से यह स्पष्ट प्रतीत होगा कि यही हमें एक भारतीय राष्ट्रभाषा की आवश्यकता है।

यह अनिवार्य नहीं है कि इस प्रकार की राष्ट्र-भाषा संस्कृतिवहिनी भाषा भी हो; यह भी सम्भव है कि इस भाषा में आरम्भ में संस्कृतिवाहिनी होने की योग्यता न हो। किन्तु इस प्रसङ्ग में अंग्रेज़ी अथवा अंग्रेजी के कृत्रिम लघुरूप का, जिसका आजकल 'बेसिक इंगलिश' के नाम से प्रचार हो रहा है, भारतीय जीवन में स्थान नहीं है। इधर यूरोप मे अनेक प्रकार की कृत्रिम अंतर्राष्ट्रीय भाषाओ की सृष्टि की गई है, जैसे— 'एस्पेरान्तो' [Esperanto], 'इदो' [Ido], 'नोवियाल' [Novial] 'ईडियम न्यूट्रल' [Idiom Nautral] आदि। ये पंडितों की झोंक अथवा उनके विचारानुसार बनी हुई कृत्रिम भाषाएँ हैं। स्वाभाविक भाषाएँ न होने के कारण इनमें जीवनी-शक्ति का अभाव है। ये सभी भाषाएँ यूरोपीय जलवायु में बनी हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि इनमें से एक भी हमारे लिए सुविधाजनक न होगी।

भारत की वर्त्तमान दशा पर विचार करने से राष्ट्रभाषा या जातीय भाषा के रूप में स्वीकृत होने की योग्यता हिन्दी

(हिन्दुस्थानी) में ही सबसे अधिक है। यदि भारत मे केवल हिन्दू ही होते तो संस्कृत को राष्ट्र-भाषा के रूप मे प्रतिष्ठित किया जा सकता था। गत तीस शताब्दियों से संस्कृत चली आ रही है। सहज एवं सरल संस्कृत को भारत की राष्ट्र-भाषा बनाने में उतनी बाधा भी उपस्थित न होती। मैंने देखा है कि पञ्जाब से आये हुए आर्य-समाजी प्रचारक कलकत्ते के गोल-तालाब ऐसे साधारण स्थान में सरल संस्कृत में भाषण दे रहे हैं, और बंगाली भद्र-पुरुष उस भाषण को साधारणतया समझ लेते हैं; कलकत्ते की संस्कृत-साहित्य-परिषद् के सदस्यो द्वारा सम्पूर्ण 'मृच्छकटिक' नाटक रात-भर खेला जा रहा है और बंगाली नर-नारी आग्रह सहित उसे आदि से अन्त तक देखते सुनते, और रस ग्रहण करते हैं। दूसरे प्रदेशों मे भी मैंने ऐसा ही देखा है। विख्यात प्राच्य-विद्या-विशारद तथा संस्कृत साहित्य के अनुरागी अंग्रेज विद्वान आचार्य एफ डबल्यू टामस ने संस्कृत को फिर राष्ट्रभाषा बनाने की चेष्टा करने के लिए हमें परामर्श दिया था। आधुनिक युग की आवश्यकता के अनुसार सरल की हुई संस्कृत जिसमें क्रियापदों के प्रयोगों को सरल और संक्षिप्त कर लिया जा सकता है [जैसे—लट्, लिट्, लङ्, लोट्, लिङ् आदि भिन्न-भिन्न लकारों और प्रकारों में केवल लट् या वर्तमान, लङ् या सामान्य-भूत, लोट् या अनुज्ञा, लृट् या भविष्यत् एव विधिलिङ् को रखा जायगा, लिट लुङ् आदि लकारों का व्यवहार नहीं होगा; इसके अतिरिक्त आधुनिक भाषाओं की तरह शतृ तथा क्त और क्तवतु प्रत्ययान्त

रूपों तथा अस् धातु एवं भू या स्था धातु की सहायता से अनेक प्रकार के संयुक्त-काल रूप बनाये जा सकते हैं। जैसे—करोति, अकरोत्. करोतु, करिष्यति, कुर्यात्; कुर्वन् अस्ति, कुर्वन् अभवत्, कुर्वन् भविष्यति या स्थास्यति; कृतवान्, अस्ति, अभवत्, स्थास्यति; चलति, अचलत्, चलतु, चलिष्यति, चलेत्; चलन् अस्ति, अभवत्, स्थास्यति; चलितः अस्ति, अभवत्, स्थास्यति; इत्यादि] और आवश्यकतानुसार विदेशी शब्द भी जिसमें ग्रहण किये जा सकते हैं [जैसे—स जजियति कृत्वा अधुना पेनशनं भुङ्क्ते] वह सहज ही स्वीकृत हो सकती है। लेकिन मुसलमान और ऐसे अनेक हिन्दू भी जिनका मानसिक विकास संस्कृत के वातावरण में नहीं हुआ है, इस सरल संस्कृत को भी नहीं स्वीकार करेंगे। अतएव संस्कृत की बात छोड़ देनी होगी। संस्कृत के बाद अखिल भारतीय राष्ट्र-भाषा के रूप मे हम हिन्दी के अतिरिक्त अन्य किसी भी भारतीय भाषा के सम्बन्ध में नहीं सोच सकते। भारत में हिन्दी के बाद ही बँगला भाषा का स्थान है। घरेलू भाषा के रूप में बँगला का व्यवहार भारतीय भाषाओं में सबसे अधिक मनुष्य करते हैं। यद्यपि हिन्दी-हिन्दुस्थानी का बँगला भाषा की अपेक्षा दूनी संख्या में लोग शिक्षा तथा अपने बाह्य जीवन में व्यवहार करते हैं फिर भी हिन्दी-हिन्दुस्थानी बँगला-भाषियों से कम ही लोगों की घरेलू तथा मातृ-भाषा है। प्रान्तीय भेदों के होते हुए भी प्रायः ६ करोड़ लोगों में प्रचलित बँगला भाषा व्याकरण तथा अन्य अनेक विषयों में

सर्वत्र मूलतः एक ही भाषा है; किन्तु हिन्दी-हिन्दुस्थानी बोलने वालों की मातृभाषा या घरेलू भाषा के विषय में ऐसी बात नहीं कही जा सकती। लेकिन बँगला भाषा को समग्र भारत के स्वीकार करने में अनेक बाधाएँ हैं, जिनका निराकरण नहीं हो सकता। बँगला की उच्चारण-प्रणाली उनमें सर्वप्रधान है। सम्पूर्ण भारत को बँगला का उच्चारण और विशेषतया संस्कृत शब्दों का बँगला उच्चारण स्वीकार नहीं कराया जा सकेगा; और अन्य प्रान्त के लोगों की सुविधा के लिए बंगाली अपनी मातृ-भाषा के उच्चारण में परिवर्त्तन करेंगे, ऐसी कोई सम्भावना भी नहीं है। बँगला के निजी शब्दों का उच्चारण भी जटिल है और दूसरे प्रान्त के लोगों के लिए उसे शुद्ध रूप में ग्रहण करना भी कठिन कार्य है। इसके अतिरिक्त साहित्यिक बँगला की शैली के साधु और चलित दो भेद है। हिन्दी में यह बखेड़ा नहीं है। बँगला साहित्य अवश्य विराट् है। भारत की अनेक भाषाएँ साहित्य के सम्बन्ध में बँगला से बहुत पीछे है। किन्तु हिन्दी, गुजराती, मराठी का साहित्य भी द्रुतगति से उन्नति कर रहा है। और इस बात को भी स्वीकार करना होगा कि काव्य, नाटक और उपन्यास को छोड़कर बंगला में अन्य साहित्य अधिक नहीं है। उधर हिन्दी आदि भाषाएँ सर्वांगीण साहित्य के निर्माण करने में संलग्न हैं। और इस बात को भी स्मरण रखना होगा कि केवल उच्चकोटि के साहित्य के ही ज़ोर से अंतर्प्रान्तीय या अंतर्राष्ट्रीय भाषा के रूप में कोई भाषा प्रतिष्ठित नहीं हो सकती। भाषा की प्रतिष्ठा या प्रसार के कारण दूसरे प्रकार के होते हैं।

जो उस भाषा को बोलते हैं उनकी कर्मठता, प्रसादशक्ति और अधिकार शक्ति के ऊपर ही उस भाषा की प्रतिष्ठा तथा सार्वजनिक स्वीकृति निर्भर रहती है। शेक्सपीयर, मिल्टन, शैली, ब्राउनिंग, डिकेंस, स्काट् का साहित्य पढ़ने के लिए ही संसार में लाखों आदमी अंग्रेजी नहीं पढ़ते; अंग्रेजों की कर्मठता, प्रसाद-शक्ति तथा अधिकार-शक्ति के ज़ोर से ही अंग्रेजों की भाषा की इतनी प्रतिष्ठा है। व्यापार तथा अर्थनीति के क्षेत्र में भाषा का महत्त्व न होने से बाहर के लोगों के लिए वह अग्राह्य होती है। और कभी-कभी यह भी देखा जाता है कि एक दूसरे के लिए अबोध्य या बहुत सी दुर्बोध्य छोटी बड़ी भाषाएँ जहाँ एक ही देश में आ मिलती हैं वहाँ जो भाषा सबसे आसान होती है, उसका और कोई मूल्य न होने पर भी, उसके बोलने वालों की तनिक भी प्रतिष्ठा न होने पर भी, सबकी सुविधा की गरज़ से वह भाषा अन्तर्जातीय भाषा बन जाती है। उदाहरण स्वरूप मलाया की भाषा ली जा सकती है। मलाया प्रायद्वीप तथा द्वीपमय भारत में मलाया की भाषा के साथ-साथ देश की अपनी भाषा और इंडोनेशिया की आठ-दस विभिन्न भाषाएँ वर्त्तमान हैं और इनके अतिरिक्त चार या पाँच प्रकार की परस्पर दुर्बोध्य प्रान्तीय चीनी भाषाएँ, अँग्रेजी, डच, तामिल, तेलुगु, हिन्दुस्थानी, पञ्जाबी, पश्तो, अरबी आदि भाषाएँ आ पहुँची हैं। इनमें मलाया की भाषा सबसे सरल है; अतः यही इस प्रदेश की अंतर्जातीय भाषा बन गई है। बाजारी हिन्दी या सरल हिन्दी में यह गुण है कि यह अति सरल भाषा

है; इसी कारण समस्त भारत में इसका प्रसार इतनी सरलता-पूर्वक हो सका है।

एक बात और है। यह बहुरूपी भाषा हिन्दी [या हिन्दुस्थानी] एक बड़े आदर्श की प्रतीक या चिह्न बन गई है। हिन्दी भाषा अखंड भारत की एकता के आदर्श का मुख्य प्रतीक है। समग्र भारत की जनता के जीवन या विचार-धारा में बँगला या कोई अन्य भारतीय भाषा इस उच्च स्थान पर नहीं पहुँच सकी है। वास्तव में सरल हिन्दी ही समग्र भारत की जातीय राष्ट्र-भाषा के रूप में विद्यमान है। अंग्रेजी न जानने वाले दो भिन्न-भिन्न प्रान्तों के भारतीय जब आ मिलते हैं तब वे परस्पर वार्तालाप करते समय अन्य किसी भाषा के बोलने के पूर्व हिन्दी [हिन्दुस्थानी] में ही बोलेंगे या बोलने की चेष्टा करेंगे। संभव है वह हिन्दी अत्यंत अशुद्ध तथा टूटी-फूटी हो; किन्तु उसे 'हिन्दी' ही कहना पड़ेगा। समस्त भारत के घुमक्कड़ साधु-संन्यासी [और अनेक मुसलमान फकीर दरवेश भी] जो एक प्रान्त से दूसरे प्रान्त में अथवा एक तीर्थ से दूसरे तीर्थ में घूमते रहते है वे हिन्दी ही सीखते हैं और हिन्दी ही बोलते हैं। उत्तर भारत की प्रधानता के कारण भारतीय सेना विभाग में हिन्दुस्थानी का [उर्दू या उर्दू मिली जुली हिन्दी] ही का बोलबाला है। भारत के व्यापारिक जहाजों के संबंध में भी यही बात सत्य है। प्रतिवर्ष बंबई तथा कलकत्ते में बने अनेक हिन्दी सवाक् चित्रपट भारत के सैकड़ों नगरों में तथा सुदूर गाँवों में हफ्तों चलते हैं; 'अछूत-कथा', 'चंडीदास,' 'भाभी,' 'गृहदाह,' 'भरत-मिलाप,' 'रामराज्य', 'झूला'

और 'वसंत' जैसी फिल्मों को हिन्दी-उर्दू भाषी या हिन्दी-उर्दू-ग्राही जिस आग्रह से देखते हैं उसी आग्रह से बंगाली, मराठी, सिन्धी, नेपाली तथा उड़िया भी देखते हैं; दक्षिण-भारत के तेलगु लोग और यहाँ तक कि कन्नड़ तथा तमिल लोग भी देखते है और इनका रस लेते हैं; और इन फिल्मों के हिन्दी गाने सारे भारत के नगरों और गाँवों के नौजवान और बच्चे गाते हैं।

भारत के बाहर, जैसे बर्मा में, 'भारतीय भाषा' से लोग हिन्दी को ही समझते हैं। [मैंने रंगून में एक बर्मी को हिन्दी में इस प्रकार कहते सुना है—'जो काला बात सब काला लोग बोलता है, वही बोलो' अर्थात् 'हिन्दी में बोलो'। बर्मी लोग भारत-वासियों को 'काला' कहते हैं ।] इसी प्रकार द्राविड़ भाषी दक्षिण भारत में उत्तर भारत की जिस भाषा को सबसे अधिक लोग बोल सकते हैं वह हिन्दी ही है।

'हिन्दुस्थानी' हिन्दुओं की भाषा हो गई है, मुसलमान इस भाषा को अपनी भाषा नहीं कह सकता है और न इसे आदर ही प्रदान कर सकता है। हिन्दू भी अपनी राष्ट्रीय-लिपि देव-नागरी को नहीं छोड़ सकता। क्योंकि देवनागरी लिपि-पद्धति के अनुसार अधिक वैज्ञानिक है। उर्दू की अरबी लिपि और हिन्दी की देवनागरी लिपि, दोनों में बनावट तथा शैली सम्बन्धी इतना अधिक पार्थक्य है कि दोनों का सामंजस्य संभव नहीं है। इन दोनों विभिन्नधर्मी लिपियों में समझौते को असाध्य देखकर, कांग्रेस ने संकट में पड़कर इस बात की घोषणा की थी कि भारत-वर्ष की राष्ट्रभाषा 'हिन्दुस्तानी' (हिन्दुस्थानी) है—हिन्दुओं की साधु हिन्दी भी नहीं, मुसलमानों की उर्दू भी नहीं; और इस राष्ट्रभाषा हिन्दुस्तानी को इच्छानुसार देवनागरी तथा अरबी दोनों वर्ण-मालाओं में से किसी में भी लिखा जा सकता है।

यदि एक भाषा रखनी है तो उसकी लिपि भी एक से अधिक नहीं हो सकती। वर्त्तमान परिस्थिति में जब तक अरबी या फारसी अर्थात् उर्दू लिपि और देवनागरी लिपि इन दोनों में से एक को हिन्दू मुसलमान स्वीकार नहीं कर लेते, तब तक इसका एक मात्र प्रतिकार यही है कि इन दोनों के स्थान पर एक तृतीय वर्णमाला [रोमन या लैटिन या पश्चिमी यूरोप की वर्णमाला] को स्वीकार किया जाय। यह व्यवस्था केवल हिन्दी-उर्दू के झगड़े को मिटाने के लिए ही नहीं वरन्, रोमन वर्णमाला की अपनी कई विशेषतायें तथा उसकी उपयोगिता आदि पर विचार करके प्रस्तावित की गई है।

[८] भारतीय [देवनागरी] अरबी-फारसी [उर्दू] एवं रोमन वर्णमाला के गुण-दोष

आरंभ में अरबों ने सीरिया वालों से लिपि-विद्या सीखी। प्राचीन अरबी लिपि 'कुफी' के नाम से विख्यात है। आज भी अलंकरण के लिए यह कभी-कभी अरबी फारसी तथा उर्दू लिखने में व्यवहृत होती है। मूल अरबी लिपि नितान्त अपूर्ण थी। अनेक प्रकार के नुक्तों या बिन्दुओं को लगाकर इस लिपि को पूर्णतर और व्यवहारोपयोगी बनाया गया। ह्रस्व-स्वर की ध्वनियों का इस वर्णमाला में निर्देश नहीं होता था। बाद में ह्रस्व, विराम, द्वित्व व्यंजन-ध्वनि एवं अनेक ध्वनियों के निर्देश के लिए कई चिह्नों की उद्भावना हुई।

'कुफी' लिपि का आकार बाद में 'नस्ख' लिपि में परिणत हो गया। आजकल इस 'नस्ख़' लिपि में ही अरबी और कभी-कभी फारसी और उर्दू भी लिखी और छापी जाती हैं। ईरान (फारस) विजय के पश्चात् अरबी, कुफी, तथा नस्ख़ लिपि पारसियों द्वारा स्वीकृत हुई। नस्ख़ को कुछ परिवर्त्तित ढंग से लिखने के फलस्वरूप 'नस्त'लिक़' लिपि की उत्पत्ति हुई। साधारणतया फारसी तथा उर्दू इस 'नस्त'लिक़' अरबी लिपि में ही लिखी जाती है, तथा लिथो में पत्थर के छापे से छापी जाती है।

अरबी में फारसी की कुछ ध्वनियाँ नहीं हैं। इसलिए फारसी के लिए प्रयुक्त अरबी लिपि में उन ध्वनियों को प्रकट करने के लिए चार नये अक्षर जोड़ दिये गये हैं। भारतीय हिन्दी भाषा जब अरबी-फारसी लिपि में लिखी जाने लगी तो हिन्दी की कुछ ध्वनियों को व्यक्त करने के लिए, जो अरबी-फारसी में नहीं हैं, क्रमशः तीन अक्षर बने। इस प्रकार मूल अरबी के २८+फारसी के ४+हिन्दी के ३=३५ अक्षरों से उर्दू वर्णमाला का निर्माण हुआ। इसमें महाप्राण ध्वनियाँ अल्पप्राण वर्ण के बाद 'ह' जोड़कर बनाई जाती हैं। उदाहरण स्वरूप ख=क् ह, घ=ग् ह, भ=ब् ह इत्यादि। [सिन्धी में लिखी जाने वाली फ़ारसी वर्णमाला में महाप्राण ध्वनियों के लिए अलग-अलग अक्षर बने हैं, इसलिए सिन्धी की वर्णसंख्या और भी अधिक है।] किन्तु इतने वर्णों की अधिकता होने पर भी भारतीय भाषा 'हिन्दुस्थानी' के लिए यह वर्णमाला नितान्त अनुपयोगी प्रमाणित हुई है। इस सम्बन्ध में पहली बात तो यह है कि ह्रस्व स्वरों के लिए कतिपय अलग चिह्न होने पर भी साधारणतः उनका प्रयोग नहीं होता है। यदि अंग्रेजी में band, bend, bond, bund के लिए केवल bnd लिखा जाता, या sold, solid, salad, slid, sullied के लिए केवल sld लिखा जाता, तो यह दशा उर्दू की सी ही होती। एक, दो या तीन बिन्दु (नुक्ते) कुछ व्यंजन ध्वनियों के विशिष्ट रूप के प्रतीक अर्थात् वर्ण के निर्देशक (सूचक) हैं। इस प्रकार एक धनुषाकार चिह्न के ऊपर एक बिन्दु देने से 'न', दो देने से 'त', तीन देने से 'थ' या 'स',

बनता है; नीचे एक बिन्दु देने से 'ब', दो से 'य' 'ए' या 'ई', और तीन से 'प' बनता है। यह व्यवस्था आँखों के लिए विशेष कष्टप्रद है। दीर्घस्वर तथा संध्यक्षर 'ए', 'ई' 'ऐ' और व्यञ्जन 'य', तथा उसी प्रकार 'ओ' 'ऊ' 'औ' और व्यञ्जन 'व' (=v. w.), इनका पार्थक्य नहीं प्रदर्शित होता है। इसके अतिरिक्त संयुक्ताक्षर की भी जटिलता है। कई जगह एक ही अक्षर के तीन-तीन विभिन्न आकार हैं। अरबी लिपि दाहिने से बायें लिखी जाती है, लेकिन अरबी में व्यवहृत [भारत से प्राप्त] संख्या-चिह्न बायें से दाहिने लिखे जाते हैं; यह एक बहुत बड़ी असुविधा है। यूरोपीय लिपि के साथ, यूरोपीय संगीत की स्वर-लिपि के साथ, यूरोपीय गणित के साथ, इस लिपि का सामंजस्य नहीं है। इस सब विशेषताओं के कारण अरबी भाषा के क्षेत्र के अतिरिक्त किसी भी आर्य-परिवार की या अन्य परिवार की भाषा के लिखने के लिए अरबी या उर्दू वर्णमाला का प्रयोग सरल कार्य नहीं है। अरबी तथा फारसी लिपि देखने में सुन्दर हैं। कलात्मक दृढ़, सबल तथा सरल-रेखा-युक्त कुफी लिपि; ताल-लयमय 'नसख़्' लिपि, नृत्य-हिल्लोल-मय नस्त'लिक़ लिपि—ये सब Calligraphy अर्थात् सुन्दर लिखावट की दृष्टि से मनोहर निदर्शन हैं। किन्तु उससे क्या? भाषा अच्छी तरह न जानने से इस लिपि को शुद्ध भाव से और द्रुतगति से पढ़ना कठिन है। वाक्य की संगति सोचकर 'क्ल्' को 'कल' या 'कुल' अथवा 'किल' पढ़ें, यह समझना पड़ता है। अरबी या उर्दू लिपि के लिखने का ढङ्ग बहुत कुछ अंग्रेजी

'संकेत-लिपि' (Short-hand) के समान है। विशेषतया शीघ्र लिखने के लिए मँजे हाथों 'शिकस्ता' नामक लिखी हुई रीति का पाठोद्धार करना कठिन है। वर्णों के बिन्दु और संयुक्त-वर्णों में लिखे जाने वाले संक्षिप्त रूप दृष्टि-शक्ति के लिए हानिकारक हैं। यह वर्णमाला विदेश से आई है, और केवल ३५० या ४०० वर्षों से एक भारतीय भाषा में इसका आंशिक प्रयोग हो रहा है। भारत के बहु-संख्यक हिन्दुओं मे इस लिपि के प्रति प्रेम या उत्साह नहीं है। उर्दू, सिन्धी और काश्मीरी को छोड़कर, बाकी जो भारतीय भाषाऍ भारतीय मुसलमान लोग बोलते हैं, वे साधारणतः इस लिपि को नहीं जानते हैं या मातृभाषा के लिए इसे काम में नहीं लाते हैं। पञ्जाब तथा उत्तर प्रदेश के हिन्दुओं ने पिछले कई दशकों से अपने अन्दर देवनागरी का पुनः प्रचलन अधिक आरंभ किया है। भारत के जो मुसलमान उर्दू लिपि का प्रयोग करते हैं, उनके सम्बन्ध में यह अवश्य देखना होगा कि उसकी प्रतिष्ठा या प्रचलन में कोई बाधा न पड़ने पावे। लेकिन समग्र भारतीय जनता के कंधों पर इस लिपि के लादने का कोई न्याय या सुयुक्ति नही है। इसके अतिरिक्त हमें यह भी स्मरण रखना चाहिये कि कुछ ही समय पूर्व मुसलमान-धर्मावलम्बी तुर्क जाति की प्रगतिशील जनता ने इस अरबी लिपि का बहिष्कार करके तुर्किस्तान में रोमन और मध्य एशिया में सिरिलिक (Cyrillic) यानी रूसी लिपि को अपनाया है। ईरान में भी अरबी लिपि के बहिष्कार के लिए आलोचना और आन्दोलन चल रहे हैं।

भारत के प्रायः चालीस करोड़ लोगों में से अधिक से अधिक तीन करोड़ से अधिक लोग अरबी-फारसी यानी उर्दू लिपि से परिचित नहीं हैं। भारतीय लिपियों में सबसे अधिक प्रचलित देवनागरी लिपि है। यह सोलह करोड़ से अधिक लोगों की साधारण लिपि है। ६½ करोड़ बंगाली तथा आसामी; १ करोड़ १४ लाख से अधिक उड़िया; और तेलुगु-कनड़ी-तुलु-तमिल-मलयालम भाषी ६½ करोड़ द्राविड़-भाषी लोग; पंजाब और अन्यत्र गुरुमुखी लिपि प्रयोग करने वाले ४३ लाख सिक्ख आदि, सब जिन लिपियों का प्रयोग करते हैं उन लिपियों [बँगला-असमिया, उड़िया, तेलगु-कनड़ी, ग्रंथ-तमिल-मलयाली और गुरुमुखी] को देवनागरी का ही रूप-भेद कहा जा सकता है। इसके अतिरिक्त, १९३१ की जनगणना के अनुसार हिन्दुओं की संख्या २४ करोड़ थी। उनकी पवित्र भाषा या शास्त्र-भाषा संस्कृत की सर्वमान्य अखिल भारतीय लिपि देवनागरी ही है। देवनागरी के संबंध में निम्नलिखित महत्त्वपूर्ण बातों पर विचार करना चाहिए :—

√[१] भारत की सबसे अधिक जनसंख्या में देवनागरी ही अधिक प्रचलित है।

√[२] भारतीय लिपियों में प्रधान, प्रतिनिधि-स्थानीय लिपि देवनागरी के वर्णों का अवस्थान वैज्ञानिक आधार पर प्रतिष्ठित है—ध्वनितत्त्व के विश्लेषण के अनुसार इसके वर्ण सजाये गये हैं और इस दृष्टि से, संसार में वैज्ञानिक पद्धति से गठित वर्ण-मालाओं में भारतीय लिपि एकमात्र लिपि है।

[३] यह भारत की अपनी लिपि है। विशेष रूप से यह भारतीय संस्कृति की प्रकाशक है। इसकी उत्पत्ति प्रागैतिहासिक युग में ई० पूर्व चौथी सहस्राब्दी में मोहन-जो-दड़ो तथा हड़प्पा की लिपि से हुई थी। इसका प्राचीन रूप आज से ढाई तीन हज़ार वर्ष पूर्व संस्कृत और आर्य भाषाओं के लिए स्वीकृत हुआ था, और इसी का प्राचीन रूप ब्राह्मी ई० पू० तीसरी शताब्दी से पहले ही एक प्रकार से अखिल-भारतीय लिपि बन गया था।

[४] यह एक पूर्ण वर्णमाला है। इसमें प्रत्येक स्वर तथा व्यंजन ध्वनि के लिए पृथक्-पृथक् वर्ण हैं।

किन्तु अनेक गुणों के होते हुए भी देवनागरी लिपि में कतिपय दोष भी है। देवनागरी या भारतीय लिपि सूक्ष्म-ध्वनि विश्लेषण के आधार पर बनी है, किन्तु प्रयोग में यह अक्षरात्मक बन गई हैं। रोमन लिपि की भाँति इसे केवल एक मात्र ध्वनि के प्रकाशक वर्ण के आधार पर बनी लिपि नहीं कहा जा सकता। क्योंकि देवनागरी जैसी भारतीय लिपि में लिखित एक या एक से अधिक व्यंजन से संयुक्त स्वर-ध्वनि से मिलाकर बने एक-एक Syllable या अक्षर, शब्द के अखंड अंश हैं। एक मात्र ध्वनि को निर्देश करने वाले स्वर या व्यंजन वर्ण अलग-अलग व्यवहृत नहीं होते—"प्रीत्यर्थे"—इस शब्द के वर्णविन्यास या बनावट में तीन अक्षर मिलते हैं—"प्री," "त्य," "र्थे"। ये तीनों अक्षर विभिन्न व्यंजन तथा स्वरों के सहयोग से बने हैं। इस प्रकार एक-एक ध्वनि के सूचक

पृथक् पृथक् वर्ण एक अक्षर में अङ्गाङ्गिरूप से मिलकर खंडित या गुप्त रूप से वर्तमान हैं। रोमन लिपि में इसके प्रतिरूप prityarthe में विभिन्न ध्वनियों के प्रतीक अविमिश्र भाव से अलग-अलग यों मिलते हैं—p-r-i-t-y-a-r-th-e। इसके अतिरिक्त, भारतीय लिपि में स्वर-ध्वनियों के लिए जो वर्ण विद्यमान हैं, उनके दो-दो (कहीं-कहीं दो से अधिक भी) रूप या आकार हैं—शब्द के आदि में रहने पर एक प्रकार का रूप रहता है, और शब्द के मध्य या अंत में दूसरे प्रकार का रूप [जैसे—उ—ु]। दो या उससे अधिक व्यंजन ध्वनियाँ एक साथ आने पर इस वर्णमाला में वे व्यंजन-वर्ण मिलकर एक संयुक्त-वर्ण बनाते हैं; बहुधा इस प्रकार के संयुक्त वर्ण में मूल-वर्ण का संक्षिप्त या भग्न रूप दिखलाई पड़ता है। किन्तु कभी-कभी दो वर्णों के मिलने के कारण एक नूतन वर्ण बन जाता है—जैसे, "ज्+ञ=ज्ञ" "क्+ष=क्ष" "त्+र=त्र" इत्यादि। इन संयुक्त-वर्णों को सीखना छात्रों के लिए अत्यन्त कठिन है। देवनागरी (तथा उसी प्रकार की प्रायः सभी भारतीय वर्णमालाओं) के ५० वर्ण (१६ स्वर+३४ व्यंजन) मिलकर सात-आठ सौ संयुक्त वर्ण बनाते है। छपाई के लिए इनके कम से कम ४५० भिन्न-भिन्न टाइपों या अक्षरों की आवश्यकता पड़ती है। इसके अतिरिक्त, वर्णों के रूप या आकार अत्यन्त जटिल हो गये हैं। रोमन लिपि से तुलना करने पर यह स्पष्ट हो जायगा—जैसे, ल, ल=l; क, क=k; च, ᴅ=c; ज, ज=j; ह, ह=h, इ, ई=i। देवनागरी को शीघ्रता से लिखना भी सरल

नहीं है, यद्यपि देवनागरी वर्णमाला में अलंकारहीन भास्कर्य या प्रतिमा-कला जैसा गंभीर और सरल सौन्दर्य है।

देवनागरी से तुलना करने पर रोमनलिपि की प्रकृति, कि इसमें शुद्ध ध्वनि-सूचक वर्णों के अलग-अलग अवस्थान होते हैं, तथा इसके प्रयोग उसके विशेष गुण ही मानने पड़ेंगे, और रोमन-लिपि के सरलतर रूप भी इसके पक्ष में हैं। रोमन-लिपि में दो वर्णों को मिलाकर नूतन संयुक्तवर्ण बनाने की रीति भी साधारण नहीं है (एक x और æ, œ, fi, fl, ff, ffi को छोड़कर) यहाँ संक्षिप्त अथवा भग्न आकार में वर्णों का प्रयोग नहीं होता है, स्वर-वर्ण व्यंजन-वर्णों में छिपे नहीं रहते हैं, अथवा वेश बदलकर व्यंजन वर्णों के सिर पर या पैरों के नीचे नहीं लगे रहते हैं। रोमनलिपि में स्वर-वर्ण तथा प्रत्येक व्यंजन-वर्ण सर्वत्र पूर्ण एवं अविकृत रूप में अपने बल पर, 'स्वे महिम्नि' खड़े रहते हैं।

भारतीय वर्णमाला के विज्ञानानुमोदित क्रम से सजाकर यदि सरल आकृति के रोमनवर्णों का व्यवहार किया जाता है, तो ऐसा प्रतीत होता है कि वर्तमान अवस्था में हम एक सम्पूर्णाङ्ग और श्रेष्ठ वर्णमाला बना सकेंगे। और इस बात को भी हमें स्मरण रखना चाहिए कि रोमन वर्णमाला संसार की बहुसंख्यक जनता में प्रचलित है, रोमन लिपि के पाठक तथा लेखक पाँच महादेशों में सर्वत्र विद्यमान हैं।

रोमनलिपि की समीक्षा करते समय अंग्रेजी में प्रचलित इसकी अवैज्ञानिक वर्ण-विन्यास-पद्धति की बात सोचने से काम नहीं चलेगा। प्राचीन लैटिन-भाषा में रोमन वर्णमाला

जो उच्चारण थे, प्रत्येक वर्ण के एक ही निश्चित उच्चारण (यह धारा लैटिन की कन्या इटालीय भाषा में बहुत कुछ अक्षुण्ण है), उसी को लेना पड़ेगा। अंग्रेजी की एक दम जटिल तथा नियम-विरुद्ध वर्णविन्यास ने रोमन वर्णमाला के गुणों को बहुत कुछ ढँक लिया है।

यदि भारतीय भाषाओं में बड़े पैमाने पर रोमन अक्षरों का व्यवहार करना हो तो समस्त भारतीय ध्वनियों के लिए रोमन वर्णमाला में कुछ और नये वर्णों को जोड़कर उसे जरा बढ़ा लेने की जरूरत पड़ेगी। साधारणतः, प्रचलित कतिपय रोमन वर्णों के नीचे बिन्दु, सिर पर मात्राएँ, तथा दूसरे चिह्न लगाकर कुछ विशेष नये वर्ण बनाकर उनका व्यवहार किया जाता है। किन्तु इन बिन्दु तथा मात्रादि युक्त नये रोमन वर्णों के व्यवहार में कई असुविधाएँ होती हैं। सभी 'प्रेसों' (छापे-खानों) में ये विशेष वर्ण नहीं मिलते हैं। बिन्दु और मात्राएँ आँखों के लिए कष्टदायक होती हैं। छपाई के समय प्रायः यह टूट भी जाती हैं। अतएव मेरा प्रस्ताव है कि पृथक्-पृथक् लिखे या छपे कुछ विशेष 'सूचक-चिह्नों' को प्रचलित वर्णों के बगल में बैठाकर तथा मूल वर्ण और सूचक-चिह्न दोनों को मिलाकर नये वर्ण बनाये जायँ। इससे सहज ही में प्रचलित रोमन अक्षरों की तथा सर्वत्र मिलने वाले कुछ सूचक चिह्नों की सहायता से भारतीय वर्णमाला के सभी वर्णों के रोमन प्रतिवर्ण बनाये जा सकेंगे, नये अक्षरों के लिए चिंतित नहीं होना पड़ेगा। इस प्रकार के नये Indo Roman या "भारत-रोमक" वर्णमाला के

वर्णों को भारतीय (संस्कृत) वर्णमाला की तरह सजाया जायगा। वर्णों के नाम भी देशी या भारतीय होंगे। जैसे— k को 'क'—अंग्रेज़ी की तरह Kay='के' नहीं; g को 'ग'— Gee='जी' नहीं; h को 'ह्'—Aitch='ऐच' नहीं; w को 'व'— Double-yoo= डब्ल्यू' नहीं; kh को 'क-पर प्राण ख' 'के-एच' नहीं; n को 'न' या 'दंत्य न'—'एन्' नहीं; n′ को चोटी-वाला मूर्धन्य ण'; s′ को 'कंधे पर पाई वाला तालव्य श'; s' को चोटीवाला मूर्धन्य ष'; s को 'दंत्य स'; a′ को 'दीर्घ आ'; pa′n,c को पढ़ेंगे 'प में दीर्घ आकार, अनुनासिक 'न' 'च' मिलाकर 'पाँच'; इत्यादि इत्यादि। देवनागरी तथा 'बँगला' आदि भारतीय वर्णमालाओं का प्रत्येक वर्ण इस नूतन भारतीय रोमक वर्णमाला में इसी प्रकार बनेगा।

अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ, ऌ, ए, ऐ, ओ, औ क्रमशः=a, a′, i, i′, u, u′, r˙, r′, l′, e, ai, o, au; तथा अं अः=am˙ ah˙ अँ=an′, आँ=a′n,

क ख ग घ ङ=k kh g gh n˙;
च छ ज झ ञ=c ch j jh n′;
ट ठ ड ढ ण=t' t'h d' d'h n˙; ड़ ढ़=r′ r′h
त थ द ध न=t th d dh n;
प फ ब भ म=p ph b bh m;
य र ल व=y r l w (v);
श ष स ह=s′ s' s h ;

बँगला अन्तस्थ—य़ (य़) = j' ; वैदिक मूर्धन्य ळ = l' ;

इसके अतिरिक्त, उर्दू वर्णमाला के वर्णों को इस प्रकार से लिखा जा सकता है—

? (=अलिफ हमज़ा); b, p, t, t', s·; j, c h†, kh· या x ; d, z·. ; r, r', z, z' ; s, s'' ; s), z), t), z·), †, gh· f, q ; k, g ; l ; m ; n ; w (v) ; h ; y ;

और अरबी के शुद्ध उच्चारणों को लेकर अरबी वर्णमाला के प्रतिरूप इस प्रकार के होंगे—

? ; b, t, th·; j या g'', h†, x या kh· ; d dh· ; r z ; s, s' ; s), d), t), dh·); †, gh· ; f, q ; k ; l ; m ; n; w ; h ; y ।

कोल (संथाल इत्यादि) भाषाओं की कुछ विशेष व्यंजन ध्वनियाँ इस प्रकार दिखाई जायंगी—k,, c,, t,, p, ; और तमिल तथा अन्य (प्राचीन) द्राविड़ भाषाओं के कुछ अक्षरों के लिए—z' ; r,, n,, h, ; लिखा जा सकता है ।

भारत-रोमक वर्णमाला में Capital letters या बड़े अक्षर लिखे या छापे न जायँगे—केवल नामों के पहिले एक * तारक चिह्न बनाना पड़ेगा । इस प्रकार प्रचलित २६ रोमन वर्णों और आठ-नौ सूचक-चिह्नों (स्वर को दीर्घता और तालव्य ध्वनि के लिए ('), संथाली आदि की 'निपीड़ित' व्यंजन-ध्वनियों के लिए (,), मूर्धन्य ध्वनि के लिए ('), कुछ खास ध्वनियों के लिए (·) तथा ('), और अरबी के 'ऐन्' के लिए (†), अनुनासिक के लिए (n,) (n के पैर के नीचे लकीर), और इसके अतिरिक्त व्यक्ति तथा स्थान वाचक नामों

के पहले (*), और संस्था-वाचक चिह्न, विराम चिह्न इत्यादि कुल मिलाकर ५० वर्णों से सब काम निकल जायेगा। इतालिक Italic अक्षरों की आवश्यकता पड़ने पर, उनके लिए एक सौ से अधिक अलग अक्षरों की आवश्यकता नहीं होगी।

प्रस्तावित भारत-रोमक वर्णमाला के सम्बन्ध में विचार तथा इसके प्रयोग के नमूने, [ख] परिशिष्ट में दिए गए हैं।

यदि हम स्वेच्छा से आगे बढ़कर अपने लाभ के लिए इस नई लिपि को अपनाते हैं तो हमारे राष्ट्रीय आत्मसम्मान में बट्टा लगने का कोई कारण नहीं। यूरोप में प्रायः सर्वत्र स्वीकृत metric system अथवा दशमिक गणना, यूरोपीय घड़ी तथा दूसरे यंत्र, ख्रीस्टीय सन तथा यूरोपीय महीनों के नाम आदि कितने ही सुभीते की बातों की भाँति, रोमक-लिपि को भी हम लोग सहज ही स्वीकार कर सकते हैं। प्रस्तावित भारत-रोमक लिपि में हमारी भारतीय वर्णमाला का वैज्ञानिक क्रम ज्यों का त्यों रहेगा; केवल सरलतर आकार के रोमन वर्णों को लिया जायेगा, जिनका संसार में सबसे अधिक प्रचलन है। इस प्रकार की सहज, सरल और स्वल्प-संख्यक वर्णमाला की सहायता से देश में वर्णज्ञान-विस्तार तथा छापने के काम में जो सुभीता होगा, वह विचारणीय है (प्रायः ५०० अक्षरों का काम ५० अक्षरों से चल जायेगा)। इसके अतिरिक्त इससे उर्दू देवनागरी का झगड़ा भी सदा के लिए मिट जायेगा। इन बातों पर विचार कर रोमन लिपि (इन्दो-रोमन या भारत-रोमक-लिपि) परीक्षा कर देखने लायक है।

भारतीय सेना में अंग्रेजी के बाद ही रोमन लिपि में हिन्दुस्थानी (उर्दू) का प्रचलन है । ऑल इंडिया रेडियो (अखिल भारतीय आकाशवाणी) द्वारा प्रकाशित The Indian Listners नामक अंग्रेजी पत्र में भी विभिन्न भारतीय भाषाओं के गानों आदि की पहली पंक्तियाँ नियमित रूप से रोमन लिपि में ही मुद्रित होती हैं ।

वर्तमान अवस्था में अन्तःप्रान्तीय और काम-काज के लिए जिस हिन्दी (हिन्दुस्थानी) का व्यवहार होता है, केवल उसी के लिए रोमन-लिपि (भारत-रोमक लिपि) का प्रयोग हो सकता है। इस हिन्दी का व्याकरण प्रचलित शुद्ध हिन्दी या उर्दू के व्याकरण से सरल होगा । इस सरल तथा सहज व्याकरण की हिन्दी ही आरम्भ में भारत-रोमक लिपि में लिखी तथा छापी जा सकती है। रोमन लिपि की सहायता से भारतीय और विदेशियों के लिए हिन्दी सीखना भी सहज होगा । शुद्ध साधु हिन्दी और उर्दू को आज की तरह देवनागरी और उर्दू लिपि में लिखा जा सकेगा। और इस तरह की शुद्ध देवनागरी हिन्दी तथा फारसी अक्षरों की मुसलमानी उर्दू अन्तःप्रान्तीय भाषाएँ न होकर, केवल प्रान्तीय अथवा साम्प्रदायिक भाषाएँ होकर रहेंगी ।

इस सम्बन्ध में एक बड़ी बात याद रखने लायक है। रोमन लिपि के विदेशी होने तथा इसकी प्रकृति से अपरिचित होने के कारण, आरम्भ में, इसके विरोध होने की सम्भावना है । जब तक रोमन लिपि जनता द्वारा स्वीकृत नहीं होती है, तब तक

भारत की लिपि सम्बन्धी एकता एकमात्र देवनागरी के द्वारा ही सम्पन्न हो सकती है। उर्दू के प्रयोग करने वाले मुसलमानों, सिन्धियों तथा कश्मीरी मुसलमानों के अतिरिक्त भारत के और लोगों द्वारा देवनागरी को स्वीकृत कराना उतना कठिन नहीं होगा। परन्तु लेखक का विश्वास है कि रोमन-लिपि भारत में आयेगी ही, और वह एक दिन में स्वीकृत नहीं होगी; कम से कम दो पुश्तों तक भारतीय तथा रोमन लिपियाँ साथ-साथ चलेंगी; बाद में रोमन लिपि के तुलनात्मक सुभीते को देखकर लोग उसे स्वेच्छापूर्वक स्वीकार करेंगे।

---

[९] उच्चकोटि की शब्दावली—संस्कृत या अरबी-फारसी ?

यह पहले ही कहा जा चुका है कि आजकल भारतवर्ष की प्रायः सभी भाषाएँ पराश्रयी हैं, आत्मवश अथवा आत्मकेन्द्री भाषाएँ नहीं। ये दूसरी भाषाओं से शब्द उधार लेकर अपना काम चलाती हैं,—अपनी शक्ति से शब्द गढ़कर व्यवहार नहीं करती है, या नहीं कर सकती हैं। आधुनिक भारतीय भाषाएँ जिन भाषाओं के आश्रय में हैं उन्हें दो भागों में विभक्त किया जा सकता है :—

[१] संस्कृताश्रयी भाषाएँ—इनमें उच्चकोटि के भावों को प्रकाशित करने के लिए संस्कृत के ही शब्द उधार लिये जाते हैं, और आवश्यकतानुसार संस्कृत धातुओं और प्रत्ययों की सहायता से नये शब्द बना कर काम में लाये जाते हैं; यथा—बँगला, आसामी, उड़िया, साधु अथवा नागरी हिन्दी, गुजराती, पंजाबी (गुरुमुखी), नैपाली, मराठी; और इनके अतिरिक्त वे सभी प्रान्तीय आर्य-भाषाएँ जिनका साहित्यिक पुनर्जन्म हो रहा है—जैसे, मैथिली, भोजपुरी, राजस्थानी तथा कोंकणी; इसीप्रकार हिन्दू काश्मीरी, हिन्दू सिन्धी, एवं दक्षिण की चार प्रमुख द्रविड़ भाषाएँ—तेलुगु, कन्नड़, तमिल, मलयालम (तेलुगु, कन्नड़ तथा मलयालम में संस्कृत शब्दों का बाहुल्य है; तमिल में अनेक शुद्ध द्रविड़ धातुएँ तथा शब्द हैं और

साधारणतः इनका व्यवहार भी होता है, किन्तु संस्कृत के बिना तमिल का काम नहीं चलता)।

[२] अरबी तथा फारसी आश्रित भाषाएँ—ये हैं, उर्दू, सिन्धी, काश्मीरी तथा ईरानी परिवार की दो भाषाएँ—पख्तो या पश्तो, एवं बलोची।

साधु हिन्दी में, खड़ी बोली द्वारा आत्मसात् किये गये कई सौ या कई हजार अनेक प्रकार के अरबी-फारसी शब्दों का सफलता के साथ प्रयोग होता है। कभी कभी संस्कृतज्ञ प्रान्तीय हिन्दी लेखक संस्कृत के शब्दों का अधिक मात्रा में व्यवहार करते हैं, किन्तु पछाहीं अर्थात् पश्चिमी उत्तर प्रदेश और पूर्वी पंजाब के लेखकगण, जिनकी हिन्दी या खड़ी बोली वास्तव में मातृभाषा है, सर्वजनबोधगम्य अरबी-फारसी के शब्दों का व्यवहार करने से नहीं हिचकिचाते किन्तु उर्दू अभी भी संस्कृत के शब्दों को दिल खोलकर लेने के लिए अभ्यस्त नहीं हुई है। अठारवीं शताब्दी के मध्य से उर्दू से, संस्कृत तथा हिन्दी शब्दों को बहिष्कृत करने की जो नीति चली थी, उससे यह भाषा अभी मुक्त नहीं हुई है—दो-चार शब्दों को छोड़कर अब संस्कृत शब्द उर्दू में एक प्रकार से नहीं चलते हैं; उर्दू भारत की भाषा होने पर भी इसके लेखक ऐसा रुख अख्तियार करते हैं मानो वे संस्कृत के अस्तित्व से ही अपरिचित हैं। संस्कृत, चीनी तथा ग्रीक, ये तीन भाषाएँ ऐसी हैं जिनके स्वतंत्र तथा विशिष्ट साहित्यों से आज भी सभ्य मानव को सर्वश्रेष्ठ मानसिक विचार, आध्यात्मिक अनुभूति, तथा रस एवं आनन्द

की उपलब्धि होती है; इनमें भी संस्कृत का स्थान सर्वोपरि है। संस्कृत का साहित्य भारत, एशिया तथा समस्त संसार के लिए गौरव की वस्तु है। जो भाषा संस्कृत की अवहेलना करके उच्च मानसिक तथा आध्यात्मिक विचार सम्बन्धी शब्दों के लिए अरबी फारसी जैसी विदेशी भाषाओं का द्वार खटखटाती है, उसे समस्त भारत के लोगों के लिए राष्ट्रभाषा मान लेना असम्भव है। संस्कृत-अनुरागी भारत-सन्तान यह प्रश्न आज पूछ सकती है कि क्या गत तीस शताब्दियो की संस्कृत, प्राकृत तथा आधुनिक भाषाओं की प्रगति का नमूना यही भाषा है,—

कभी, अय् मुन्तज़र-ए-हक़ीक़त्! नज़र् आ, लिबास्-ए-मजाज़-में।

अथवा

तेरे दीदार का मुश्ताक है नरगिस् ब-चश्म्-ए-वा।
तेरी तारीफ़्-से रत्-बुल्-लिसाँ सोसन् ज़बाँ होकर॥

—जो भारत की विचार-धारा, शब्दावली तथा संस्कृति से कोई सम्बन्ध नहीं रखती है, और जिसे भारत के पाँच भागों में से चार भाग लोग समझ नहीं सकते?

हिन्दी-उर्दू के शब्द-सम्बन्धी झगड़े के समझौते के लिए निम्नलिखित प्रस्ताव को मान लेने में किसी को कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए—(१) नये शब्दों की आवश्यकता पड़ने पर, जहाँ तक सम्भव हो, उन्हें शुद्ध हिन्दी (जिसके आधार पर उर्दू भी खड़ी है) अर्थात् प्राकृतज शब्दों, धातुओं तथा प्रत्ययों की सहायता से बनाया जाय; (२) साधारण अथवा विशेष

अर्थों के जिन विदेशी (अरबी, फारसी और कुछ हद तक यूरोपीय) शब्दों ने हिन्दी भाषा में अपना स्थान बना लिया है तथा जिन्हें सभी समझते तथा व्यवहार करते हैं (इस प्रकार के शब्दों की संख्या ४ या ५ हजार होगी) उनके संस्कृत या शुद्ध हिन्दी प्रतिशब्द भाषा में विद्यमान रहने पर भी, उनका बहिष्कार न किया जाय; इस प्रकार के शब्द सभी लोगों के लिए बोधगम्य है, इसका प्रमाण यही है कि कबीर जैसे हिन्दी के प्राचीन लेखक तथा उर्दू के मर्मज्ञ प्रेमचन्द जैसे आधुनिक हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ लेखक ने उन्हें अपनी कृतियों में स्थान दिया है; (३) अनावश्यक रूप में किसी भी विदेशी भाषा से शब्द उधार न लिये जायँ।

ऊपर के प्रस्ताव की व्यावहारिकता के सम्बन्ध में दृष्टान्त स्वरूप कतिपय शब्दों का उल्लेख किया जा सकता है। उत्तरी भारत की अशिक्षित साधारण जनता ने हिन्दुस्तानी भाषा का व्यवहार करते समय प्रचलित हिन्दी (शुद्ध हिन्दी तथा भाषा में स्थानप्राप्त विदेशी) शब्दों की सहायता से कितने ही उपयोगी नये शब्दों को बना लिया है। इनमें से अनेक शब्द राष्ट्रभाषा हिन्दी में ग्रहण करने योग्य हैं। जैसे 'ठंडा तार, गरम तार' (=positive, negative wire, 'धनात्मक' और 'ऋणात्मक' बिजली के तार), सेवादल, बिजलीबत्ती, हाथघड़ी, पैरगाड़ी, बालचर (=boy scout), देशसेवक, गरमी-नाप (=तापमान-यन्त्र), जवाबी चढ़ाई (=counter attack के अर्थ में), किसान-संघ, बेतार, चिड़ियाखाना, तेजी-मन्दी, जंगीलाट,

हवाई जहाज, आगबोट (=स्टीमर), जहाजी बेड़ा (convoy के अर्थ में), मनमाँगा अथवा मनचाहा (=ईप्सित, प्रार्थित), विदेश-मंत्री (=परराष्ट्र सचिव)' आदि। जनता के गढ़े हुए अनेक शब्द अशिक्षित मन के परिचायक होने के कारण राष्ट्र-भाषा में लेने योग्य नहीं समझे जायँगे। किन्तु रूढ़ि शब्द के रूप में उन्हें स्थान मिल सकता है; जैसे 'संग्रहशाला' के अर्थ में 'जादूघर', automobile अथवा 'स्वयंगच्छ' के अर्थ में 'हवा गाड़ी'। प्रचलित हिन्दी में कितने ही अरबी-फारसी शब्दों ने स्थायी स्थान बना लिया है, इन्हें सभी समझते हैं, इनके शुद्ध हिन्दी या संस्कृत प्रतिशब्द भी हैं, और उन प्रतिशब्दों को सभी समझते और कितने ही लोग व्यवहार भी करते हैं (भाषा में इस प्रकार लब्ध-प्रवेश अरबी-फारसी शब्दों के कुछ दृष्टान्त नीचे दिये जा रहे हैं; इनके भारतीय अर्थात् शुद्ध हिन्दी अथवा संस्कृत तत्सम प्रतिशब्द भी साथ-साथ दिये जा रहे हैं); फिर भी भाषा में आये हुए सर्वजन-बोधगम्य इन विदेशी शब्दों के बहिष्कार की चेष्टा ठीक नहीं होगी। जैसे 'आदमी (=मनुष्य), मर्द (=पुरुष, नर), औरत या (बाजारू हिन्दी में) जनानी (=स्त्री, नारी—'औरत' शब्द का अर्थ घृण्य होने के कारण यह वर्जनीय है), बच्चा (=शिशु, बालक), हवा (=बयार, वायु), कम (=थोड़ा, अल्प), बेशी या ज्यादा (=अधिक), मालूम (=विदित, ज्ञात), नजदीक (=नियर, निकट), मुल्क (=देश), फौज (=सेना), आईन (=विधि), शर्म (=लाज, लज्जा), जल्द (=तुरन्त

झट, शीघ्र), फ़लाना (=अमुक), ज़मीन (=भुइँ, भूमि, धरती, माटी), खूब (=अच्छा, सुन्दर), हमेशा (=सदा), देर (=बिलम्ब), जमा (=एकत्र, इकट्ठा), हिसाब (=गणना, आय-व्यय), ज़िद्द (=आग्रह, निर्बन्ध), हुक्म (=आज्ञा), मुश्किल (=कठिनाई), इंसाफ़ (=विचार), ज़ोर (=शक्ति), रोज़ (=दिन), रोज़गार (=कमाई), ख़राब (=बुरा), उम्दा (=अच्छा, भला), दुनिया (=जग, जगत्, संसार), चेहरा (=चित्र), ज़ुल्म (=अत्याचार), होश (=ज्ञान, सोच), सरकार (=शासन, राज), दफ़्तर (=कचहरी), इत्यादि-इत्यादि। किन्तु राष्ट्रभाषा हिन्दी में—स्मरण रखना होगा कि यह उर्दू या मुसलमानी हिन्दी नहीं है—निम्नलिखित शब्द भारत के अधिकांश लोगों के लिए बोधगम्य न होने के कारण नहीं चलेंगे; यद्यपि 'ऑलइण्डिया रेडियो' या 'अखिल भारतीय आकाशवाणी' द्वारा हिन्दू-मुसलमान, हिन्दी तथा उर्दू वालों, हिन्दुस्थानी-अहिन्दुस्थानी, फारसी जानने वालों तथा न जानने वालों, सभी के लिए प्रसारित सूचनाओं में 'हिन्दुस्तानी' के नाम पर ये शब्द जबरदस्ती लादे जा रहे हैं; जैसे—'इक्तिसादी, वजह, नुक़्स, मसौदा, वयनुल-अक़वामी, सियासी, मुस्तक़-बिल, सफारत्-खाना, जमूहूरी, निज़ाम, मुहिम, जुदागना इन्तिख़ाब, अशरिया, असहाब, अफ़्सरान्, ऐलान्, मुलाहिज़ा फर्माना, मौजूदा, कारनामा, महसूस, नग़मा इत्यादि, इत्यादि।

जहाँ शुद्ध हिन्दी के शब्दों से काम नहीं चलेगा वहाँ नये शब्द उधार लेने ही पड़ेंगे। इस क्षेत्र में जब तक सुबुद्धि नहीं

आती, साधु या नागरी हिन्दी एवं उर्दू, ये दोनों भाषाएँ अपने-अपने ढङ्ग से ही चलेंगी। फिर भी हिन्दू-मुसलमान सभी के व्यवहार के लिए उपयोगी अखिल भारत की प्रस्तावित राष्ट्रभाषा हिन्दी (हिन्दुस्थानी) के लिए ये विचार उपस्थित किये जा रहे हैं:—[१] अखिल-भारत की उपयोगी राष्ट्रभाषा को 'इस्लामी' भाषा के पर्याय में डालने से काम नहीं चलेगा। इस्लामी संस्कृति की वाहक उर्दू और अखिल भारत के अन्तःप्रान्तीय काम-काज तथा मेल जोल की भाषा हिन्दुस्थानी, ये दोनों एक चीज नहीं हैं। अतएव जो शब्द हिन्दी के न मिलेंगे और भारत की प्राचीन भाषा तथा संसार की सर्वश्रेष्ठ भाषा संस्कृत में मिलेंगे, उनके लिए किसी अन्य भाषा के पास जाना ठीक न होगा; (हाँ, विज्ञान तथा आधुनिक जीवन के यंत्रों, वस्तुओं और कभी कभी विचार तथा रीति सम्बन्धी अनेक शब्दों को यूरोप से लिये बिना काम न चलेगा); [२] आधुनिक-युग में आविष्कृत अनेक वस्तुओं और द्रव्यों एवं विज्ञान से सम्बन्धित अनेक क्रियाओं के नाम यूरोपीय और अन्तर्राष्ट्रीय होंगे ही; किन्तु नूतन भावों और विचारों को प्रकट करने के लिए यथा-सम्भव हमें अपने निज के शब्द अपनी प्राचीन भाषा से एकत्र करने या बनाने पड़ेंगे; [३] भारत के मुसलमानों के मनोभाव का ध्यान रखते हुए इस्लामी धर्म तथा संस्कृति सम्बन्धी विशेष एवं आवश्यक अरबी-फ़ारसी शब्दों के लिए राष्ट्रभाषा का द्वार खुला रखना पड़ेगा।

राष्ट्रीयता का ज्वार आज तुर्की भाषा से अनावश्यक अरबी-

फारसी-शब्दों को बहा ले जा रहा है और और फारस के ईरानी राष्ट्रीय लोगों ने आर्य-गौरव से गौरवान्वित होकर अब फारसी से अरबी शब्दों का बहिष्कार प्रारम्भ कर दिया है, वे शुद्ध आर्य अथवा ईरानी शब्दों का पुनः प्रयोग कर रहे हैं। तुर्की वालों में अब धर्मकार्य के लिए भी अरबी निषिद्ध है—मस्जिदों में अज़ान लोगों की मातृभाषा तुर्की में ही दिया जा रहा है। भारत की राष्ट्रभाषा में इस्लाम धर्म-सम्बन्धी शब्दो में हस्त-क्षेप नहीं किया जायेगा, क्योंकि मुसलमान यथासम्भव उन्हीं का प्रयोग करेंगे। जब राष्ट्रभाषा में यह व्यवस्था हो जायेगी, तब भारतीय मुसलमानों को संस्कृत तथा शुद्ध हिन्दी के शब्दों के सम्बन्ध में अपनी मनोवृत्ति को बदलने का अवसर मिलेगा। अरबी 'अल्लाह,' 'रसूल', 'सालात्', 'सौम', आदि धर्म-संबंधी शब्दों की जगह पर ईरानी लोग अपनी मातृभाषा के शब्द 'खुदा' (=ईश्वर), 'पैग़म्बर' (=संदेशवाहक), 'नमाज़' (=नमस्क्रिया), 'रोज़ा' (=दैनन्दिन उपवास) का व्यवहार करते हैं; किसी समय भारतीय मुसलमान भी इस देश के शब्द 'कर्तार' या 'साईं' (=अल्लाह, खुदा), 'बसीठ' (=रसूल, पैग़म्बर), 'लंघन' (=रोज़ा) आदि व्यवहार करते थे। यहाँ तक कि सुल्तान महमूद गज़नवी के चाँदी के सिक्कों पर उसकी सभा के संस्कृतज्ञ पण्डितों ने क़ल्मा का भी भारतीय (संस्कृत) अनुवाद इस प्रकार किया था—'अव्यक्तमेकम् , मुहम्मद अवतार', और 'हिजरी' अब्द का भी संस्कृत नामकरण किया था—'जिनायन वर्ष—'जिन' अर्थात् 'नबी' के 'अयन' अर्थात् मक्का से चले जाने

का वर्ष। पता नहीं, किस अपराध से भारतीय मुसलमान धर्म के सम्बन्ध में स्वदेशी रहने के गौरव से धीरे-धीरे वञ्चित हुआ है और हो रहा है, यद्यपि ईरान में यह बात आज भी पूर्णतया अक्षुण्ण है।

अरबी-फारसी-बहुल उर्दू सचमुच ही भारत के तीन चौथाई लोगों के लिए अबोध्य या दुर्बोध्य है। केवल सिन्ध, पंजाब, काश्मीर तथा पश्चिमी उत्तर प्रदेश में इस तरह की उर्दू कदाचित् बोधगम्य हो, किन्तु इन प्रदेशों के अधिकांश हिन्दू और अनेक मुसलमान विशुद्ध देशज हिन्दी या भाषा के शब्दों को ही अधिकतर पसन्द करेंगे। आज से २। ३। ४ सौ वर्ष पूर्व के दकनी तथा हिन्दी के मुसलमान कवियों ने ऐसा ही किया है।

जब रोमन लिपि की सहायता से एक ही भाषा मे हिन्दी उर्दू मिल जाने के लिए बाध्य होंगी तब यह बात अपने आप निश्चित हो जायेगी कि भाषा की शब्दावली संस्कृत-अरबी, फारसी तथा अंग्रेज़ी आदि यूरोपीय भाषाओं से किस मात्रा में ली जाय। इस प्रकार की राष्ट्रभाषा को नियंत्रित करने की चेष्टा सफल न होगी, इसे अबाध गति से चलने देना होगा; वर्णमाला के एक हो जाने से भाषा भी एक हो जायेगी, विभिन्न सम्प्रदाय के लोग भी इसी में बातचीत करेंगे; और तब जो सब से अधिक लोगों की समझ में आयेगा वही इस सम्बन्ध में ठीक रास्ता दिखा देगा। ऐसा प्रतीत होता है कि हिन्दी के 'सवाक्' अर्थात् बोलते-गाते चित्रपट भी भविष्य की राष्ट्रभाषा की शब्दावली के निर्माण में सहायक होंगे।

[१०] हिन्दी (खड़ी बोली) व्याकरण का सरलीकरण

मेरठ की खड़ी बोली या शुद्ध हिन्दी-उर्दू के व्याकरण को, समस्त भारत की जनता—'जन' या 'गण' महाराज—की सच्ची अन्तःप्रान्तीय भाषा बाजारू हिन्दी या चालू हिन्दी के रूप में इस प्रकार संक्षिप्त या और सरल किया जा सकता है कि वह एक पोस्टकार्ड मे आ जाय । शुद्ध हिन्दी की कतिपय जटिलता-मय विशेषताएँ—जैसे संज्ञा का (अप्राणिवाचक होने पर भी) स्त्रीलिङ्ग और पुंल्लिग भेद, विशेषण तथा किसी किसी क्षेत्र में क्रिया के लिङ्ग-भेद—आधुनिक भारत की अनेक भाषाओं में अज्ञात हैं । इन भाषाओं के बोलने वाले तथा मराठी, गुजराती, राजस्थानी, सिन्धी, हिन्दकी, पंजाबी, नेपाली भाषा-भाषी जिनकी भाषाओं में लिङ्ग-भेद का बखेड़ा बहुत कुछ हिन्दी ही की भाँति है, हिन्दी संज्ञा, विशेषण और क्रिया सम्बन्धी लिङ्ग की अशुद्धियों के कारण बड़े संकट में पड़ जाते हैं। किन्तु अन्तः प्रान्तीय बाजारू हिन्दी में व्याकरणगत लिङ्ग-भेद नहीं माने जाते हैं, और संज्ञा, विशेषण एवं क्रिया के बहुवचन रूपों में साधारणतः ये व्यवहार में भी नहीं आते हैं । शुद्ध-हिन्दी में एक और जटिलता है । भूतकाल में क्रिया अकर्मक होने पर कर्त्ता का विशेषण होती है, कर्त्ता का अनुसरण करके यह क्रिया,

पुंल्लिङ्ग अथवा स्त्रीलिङ्ग तथा एकवचन या बहुवचन का प्रत्यय विभक्ति ग्रहण करती है; और सकर्मक होने पर भूतकाल की क्रिया कर्म का विशेषण होती है, तब क्रिया का सम्बन्ध कर्म से ही होता है, कर्त्ता से नहीं—कर्त्ता करण-कारक के रूप में रहता है । भविष्यत् काल की क्रिया कर्त्ता के विशेषण रूप में उसका अनुसरण करती है एवं लिङ्ग और वचन का प्रत्यय ग्रहण करती है; यह बात सकर्मक तथा अकर्मक दोनों प्रकार की क्रियाओं में समान रूप में लागू होती है। ये सारी झंझटें चालू हिन्दी में नहीं हैं। जैसे शुद्ध हिन्दी में 'भात' पुल्लिङ्ग, किन्तु दाल' स्त्रीलिङ्ग है; शुद्ध हिन्दी में 'भात अच्छा बना है' किन्तु 'दाल अच्छी बनी है', किन्तु चलती हिन्दी में कहेंगे—'भात अच्छा बना है,' 'दाल अच्छा बना है' । शुद्ध हिन्दी में भविष्यत् काल में क्रिया के निम्नलिखित रूप होते हैं :—

पुंल्लिङ्ग—एकवचन	बहुवचन
उत्तम पुरुष—मैं जाऊँगा	हम, हम लोग जायेंगे;
मध्यम पुरुष—तू जायेगा	तुम, तुम लोग जाओगे;
प्रथम पुरुष—वह जायेगा	वे जायेंगे;

मध्यम पुरुष (सम्मान सूचक)—आप, आप लोग जायेंगे।

और स्त्रीलिङ्ग—

मैं जाऊँगी—हम (लोग) जायेंगी;
तू जायेगी—तुम (लोग) जाओगी;
वह जायेगी—वे जायेंगी;
आप (लोग) जायेंगी।

किन्तु बाजारू हिन्दी में केवल एक रूप 'जायेगा' से ही तीनों पुरुष, दोनों लिङ्गों और दोनों वचनों का काम निकाला जाता है; यथा 'हम जायेगा, हम लोग जायेगा; तू, तुम, तुम लोग, आप, आप-लोग जायेगा; वह (ऊ) जायेगा, ऊ-लोग जायगा'।

शुद्ध हिन्दी में कहेंगे—'मैं आया, हम आये; तू आया, तुम आये; वह आया, वे आये'; स्त्रीलिंङ्ग एकवचन में 'आई' ('आयी'), बहुवचन में 'आईं' ('आयीं'); किन्तु बाजारू हिन्दी में साधारणतः केवल एक रूप 'आया' ही चलता है। शुद्ध हिन्दी में जहाँ कहेंगे—'मैंने भात खाया, मैंने रोटी खाई, मैंने तीन रोटियाँ खाईं' (अर्थात् 'मया भक्तं खादितम्, मया रोटिका खादिता, मया तिस्रः रोटिकाः खादिताः'), वहाँ बाजारू हिन्दी में सहज भाव से प्रयोग होगा—'हम भात खाया, हम रोटी खाया, हम तीन रोटी खाया'; शुद्ध हिन्दी में कर्मणि प्रयोग में—'मैंने एक लड़का देखा, दो लड़के देखे, मैंने एक लड़की देखी, दो लड़कियाँ देखीं'; और भावे प्रयोग में—'मैंने एक लड़के को देखा, मैंने दो लड़कों को देखा, मैंने एक लड़की को देखा, मैंने दो लड़कियों को देखा', इस प्रकार कहेंगे—किन्तु चलती हिन्दी में केवल 'हम एक (या दो) लड़का (या लड़की-को) देखा', 'हम एक लड़की (को) देखा'।

सरल व्याकरण की इस सहज चलती हिन्दी को—बाजारू या (Basic) बेसिक अर्थात् बुनियादी या आधारी हिन्दी को—समाज तथा सभा-समितियों में व्यवहार के योग्य भाषा मान लेना, कार्यतः जो सर्वत्र हो रहा है उसी को जानबूझ कर प्रकट

रूप में स्वीकार करना मात्र है। शुद्ध हिन्दी अर्थात् पश्चिमी हिन्दी का देश पश्चिमी उत्तर-प्रदेश तथा पूर्वी पंजाब है—यह आर्यभाषा-भाषी भारत का बहुत ही छोटा अंश है; इसके बाहर, लोग सानन्द और साग्रह इस चलती हिन्दी को स्वीकार करेंगे। दक्षिण भारत के द्रविड़भाषियों में इस प्रकार की सहज हिन्दी और भी उत्साह के साथ ग्रहणयोग्य समझी जायेगी। इस काम को भली भाँति और अखिल भारत द्वारा ग्रहणीय रूप में सम्पादन करने के लिए भारत के विभिन्न प्रान्तों के हिन्दी के तथा भिन्न-भिन्न स्थानीय भाषाओं के विशेषज्ञों का सम्मिलित उद्योग आवश्यक है—ये लोग मिलकर व्याकरण के जिन सूत्रों को निश्चित कर देंगे उन्हीं को सब को पढ़ाया जायेगा, चलती हिन्दी की अल्पतम अथवा न्यूनतम व्याकरण सम्बन्धी नियमावली इस प्रकार निर्धारित हो सकेगी।

जो लोग घर में शुद्ध हिन्दी-उर्दू बोलते हैं, उन्हें इस प्रकार की बाजारू अथवा चलती हिन्दी को प्रतिष्ठित होते देखकर आशंका नहीं करनी चाहिये—जैसे इस समय भी चलती हिन्दी के रहते हुए शुद्ध हिन्दी-उर्दू को क्षति नहीं पहुँच रही है, वैसे ही भविष्य में भी नहीं पहुँचेगी। पश्चिमी हिन्दुस्थान के बाहर के निवासी शुद्ध हिन्दी बोलने तथा लिखने का उद्योग करते है, किन्तु उनकी अक्षमता के कारण इस भाषा का सत्यानाश हो रहा है—इस भाषा की निर्मल धारा को वे लोग अज्ञान से गँदला कर रहे हैं। अल्पसंख्यक लोगों की घरेलू भाषा सारे उत्तर भारत की राष्ट्रभाषा बनकर तथा शिक्षित अशिक्षित सभी

लोगों के हाथों में पड़कर भाषा के रूप में अब विनष्ट हो रही है; भविष्य में ऐसा होने की संभावना नहीं रहेगी। जो लोग शुद्ध हिन्दी बोलते हैं, वे इसके शुद्ध रूप को बनाये रखेंगे, स्वाभाविक ढंग से इसे और भी पुष्ट तथा शक्तिशाली करेंगे; और बाहर वाले लोगों के लिए रहेगी—यह बाजारू हिन्दी एक Concession Language अर्थात् 'रियायती भाषा' या 'सस्ती भाषा' अथवा 'सरल भाषा'। हो सकता है, भविष्य में इसमें भी साहित्य तैयार हो जाय—किन्तु इस समय हमारा उद्देश्य सरलता-पूर्वक कार्य-सम्पादन का है, साहित्य-सर्जन का नहीं। यह जब तक किसी विशेष जनसमूह की मातृ-भाषा नहीं बन जाती, तब तक इसमें साहित्य-निर्माण करने की ओर किसी का ध्यान नहीं जायेगा। परन्तु समग्र देश में इसका प्रचार हो जाने पर, सभी के इसके समझ सकने पर धी -धीरे सवाक् चित्रपट रेडियो आदि आधुनिक जगत् के अनेक प्रकार के साधनों के माध्यम से इसमें साहित्य तैयार होने में देर भी नहीं लगेगी। वह साहित्य युगोपयोगी, किन्तु नवीन रूप में प्रकट होगा। जो कुछ भी हो, सरल व्याकरण की इस चलती हिन्दी या हिन्दुस्थानी को समग्र हिन्दुस्तान के अन्तःप्रान्तीय काम-काज की भाषा घोषित करके कांग्रेस अथवा किसी अन्य सरकारी संस्था को इस भाषा के सम्बन्ध में परीक्षा करके देखनी चाहिये।

---

[११] समाप्ति

भारत की सर्वप्रधान भाषा-विषयक समस्या, राष्ट्रभाषा की समस्या है जिसे मुख्यतः हिन्दी-उर्दू समस्या कहा जा सकता है। इस सम्बन्ध में प्रस्तावित समाधान यह है—भारत की राष्ट्रभाषा सरल-व्याकरण-वाली चलती हिन्दी या हिन्दुस्थानी होगी; इस भाषा को देवनागरी वर्णमाला-क्रम से सजाई हुई रोमन लिपि (भारत-रोमक वर्णमाला) में लिखना होगा; इसमें सर्वसाधारण में प्रचलित अरबी-फारसी शब्द रहेंगे, इसी प्रकार इस्लाम धर्म एवं संस्कृति सम्बन्धी अन्य आवश्यक अरबी-फारसी के शब्दों के लिए भी इसका द्वार खुला रहेगा; किन्तु जहाँ शुद्ध हिन्दी धातुओं एवं प्रत्ययों आदि की सहायता से नवीन शब्दों का निर्माण सम्भव न होगा, अथवा जहाँ अंग्रेजी या अन्य योरोपीय भाषाओं से शब्दों का लेना उचित न होगा, वहाँ, स्वाभाविक रीति से, संस्कृत से ही ऐसे शब्द लिये जायेंगे, भारत की अधिकांश भाषाओं में ऐसे ही शब्द चलेंगे।

ऐसा प्रतीत होता है कि रोमन लिपि ग्रहण करने से ही इस समस्या का समाधान होगा।

इस रोमन लिपि की हिन्दी अथवा हिन्दुस्थानी को हमें अपने स्कूल तथा कालेजों के पाठ्यक्रम में निर्धारित करना होगा, और इसे सीखने के लिए छात्रों को विशेष रूप से उत्साहित करना होगा। समस्त राजकर्मचारियों को इसे सीखने के लिए

बाध्य करना होगा; किन्तु स्कूल-कालेजों में इसे Compulsory अर्थात् अनिवार्य करना उचित न होगा; क्योंकि यह प्रायः देखा जाता है कि इसका परिणाम अच्छा नहीं होता, पाठ्यक्रम में अनिवार्य रूप में इसे स्थान देने से छात्र इसे अनुचित भार समझेंगे, और तब इसका विरोध होने लगेगा। हिन्दुस्थानी या हिन्दी प्रान्त के बाहर, इस भाषा को यदि अतिरिक्त आवश्यक भाषा के रूप में रखा जाय, तो हिन्दी प्रान्त के छात्रों और शिक्षकों की रुचि एवं सुविधा के अनुसार उनके लिए भी एक अन्य मुख्य प्रान्तीय भाषा को निर्धारित करना पड़ेगा; ऐसा न करना अनुचित होगा।

अंग्रेजी को छोड़ देने से हमारा काम नहीं चलेगा। किन्तु सब लोगों के लिए अंग्रेजी पढ़ना अनिवार्य न होगा। किन्तु यह होते हुए भी, उच्च कक्षाओं में अंग्रेजी पढ़ने का सुअवसर देना ही होगा; और अंग्रेजी को, और प्राचीन साहित्यिक भाषाओं की दृष्टि से न देखकर, आधुनिक जीवित भाषाओं के रूप में ही लेना पड़ेगा। जो लोग आधुनिक भारतीय भाषाओं के अध्यापक होंगे, उनके लिए संस्कृत का ज्ञान आवश्यक होगा; और विशेषावस्था में हिन्दी तथा उर्दू शिक्षकों के लिए अरबी-फारसी पढ़ाने की भी व्यवस्था करनी पड़ेगी।

अन्त में, भारत की भाषा-सम्बन्धी समस्या को प्रथम श्रेणी अथवा संकटावस्था की समस्या कहना उचित न होगा। सामान्य ढङ्ग से सहज बाजारू अथवा चलती हिन्दी की सहायता से, आंशिक भाव से हिन्दी-उर्दू की सहायता से (क्योंकि

ये तीनों एक ही भाषा के विभिन्न रूप हैं), एवं अंग्रेजी की मदद से, एक प्रकार से हमारा अन्तःप्रान्तीय कार्य चल रहा है, भाषा के कारण किसी प्रकार की बाधा नहीं हो रही है। इस समय ४० करोड़ लोगों की केवल पन्द्रह साहित्यिक भाषायें हैं (इस संख्या के बीस हो जाने से भी कोई क्षति न होगी), और इनके साथ ही साथ अखिल भारतीय अन्तःप्रान्तीय भाषा के रूप में हिन्दी या हिन्दुस्थानी है; इसके अतिरिक्त, शिक्षा एवं संस्कृति की भाषा के रूप में अंग्रेजी है (और विशेषज्ञों के बीच में प्रचलित संस्कृत और फारसी-अरबी है)—इस प्रकार की अवस्था भयानक अथवा निराशा-जनक नहीं है। इस सम्बन्ध में हमें इस बात को स्मरण रखना होगा कि ये भाषाएं चाहे आर्य हों, द्रविड़ हों अथवा कोल हों, इन सभी भाषाओं में, अखिल भारत में व्याप्त विशिष्टता एवं साम्य विद्यमान है, और ये सभी अखंड भारतीय संस्कृति—भारत-धर्म—को विभिन्न प्रान्तों में प्रकाशित करती हैं। इस भारत-धर्म के उद्भव, विकास तथा पुष्टि में आर्य, अनार्य, ईरानी, तुर्क, योरोपीय, हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, सभी का हाथ है।

परिशिष्ट [क]

भारत की आधुनिक भाषाओं का निदर्शन

स्वर्गीय सर जॉर्ज अब्राहम ग्रियर्सन के Linguistic Survey of India ग्रंथ के विभिन्न खंडों से संकलित (रोमनी, फारसी, अरबी, बर्मी आदि कुछ को छोड़कर) ईसा की कही 'अमितव्ययी पुत्र की कहानी' ((Parable of the Prodigal Son) की पहली कुछ पंक्तियाँ भिन्न-भिन्न भाषाओं में दी जा रही हैं। शुद्ध या साधु हिन्दी में ये पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

किसी मनुष्य-के दो पुत्र थे। उन-में-से छुटके-ने पिता से कहा—पिताजी, अपनी सम्पत्ति-में-से जो मेरा अंश हो, सो मुझे दे-दीजिए। तब उस-ने उन-को अपनी सम्पत्ति बाँट दी।

[१] आर्य भाषा समूह

[अ] भारतीय-आर्य (संस्कृत-मूलक) शाखा

[अ—१] भारत में प्रचलित भारतीय-आर्य भाषावली

[क] उत्तर-पश्चिमी श्रेणी :

[१] हिन्दकी, लहँदा, या पश्चिमी-पंजाबी (८५ लाख)

(क) सीमान्त प्रान्त के अटक जिले के अवाण लोगों में प्रचलित हिन्दकी—

हिक्की जणे-नें दों पुत्तर आहे। उन्नहाँ विच्चों निक्ड़े पिउआँ आखेआ—पिउ, माल-नाँ जेहड़ा हिस्सा माँह आनाँ,

माँह् वण्ड-देह् । पिउ आपणाँ माल् उन्नहां वण्ड-दित्ता ।

(ख) मुलतानी—

हिक्क् मुणसे-दे डूँ पुत्तर हाइन् । उन्नहाँ-विच्चूँ नण्ढें आपणे पिऊ-कूँ आखेआ जो, हा पेओ, मे-कूँ डे जित्ती हिस्सा माल-दा मे-कूँ आन्दा हे । अत्ते ऊँ आपणी जायदाद उन्नहाँ-कूँ वण्ड डित्ती ।

[२] सिन्धी (४० लाख)

(क) सिन्ध-हैदराबाद की साधु-भाषा—

हिकिड़े माणु हुअ-खे ब' पुट हुआ । तिनि-माँ नण्ढे पिउ-खे चयो—ए बाबा, माल-माँ जे-को भाङो मुहि-जे हिसे अचे, सो मूँ-खे खणी डे' । जँहिं-ते हुन मालु बि'न् ही-खे विराहे डि'नो ।

(ख) कच्छी (कच्छ अंचल की भाषा)—

हिकड़े माड़ु-जा ब पुतर् हुआ । तें-मिञ्झा-नूँ निण्ढे पुतर पे-के चिओ, पे, मिलकत्-मिञ्झा-नूँ जू-को मूँ-जी पती-थिए, से जूँ-के डे । पोय् इन पिण्ढ-जी मिलकत् इणीं-के विराइ डिनें ।

[ख] दक्षिणी श्रेणी :

[३] मराठी (२ करोड़ १० लाख)

(क) पूना-अंचल की शुद्ध भाषा—

कोणे एका माणसास् (मनुष्यास्) दोन् पुत्र (मुळगे) होते । त्याँ-तील् धाक्टा ,बापा-ला म्हणाला, बाबा, जो माल्-मत्ते-चा वाँटा म-ला यावया-चा, तो दे । मग त्या-नें त्याँ-स् सम्पत्ति बाँटून् दिली ।

(ख) सावन्तवाड़ी राज्य की कोङ्कणी—

एका मनश्याक दोन चेड़े आसले। आनि तान्तलों धाकटा बापायक् म्हणों लाग् लो, पाय, मा-का येवो तो संसारा-चो बाण्टो, मा-का दी। मागीर् ताणें ताँ-काँ आप्लो संसार बाण्टून दीलो।

(ग) हल्बी (बस्तर राज्य, मध्य-प्रदेश)—

कोनी आदमी-चो दुइ-ठन बेटा रला। हुनी-भीतर-वो नानी बेटा बाप-को बोललो, ए बाबा, धन-माल-भीतर-ले जे मो-चो बाटा आय, मोके दिआ। तेबे हुन्-के आपन-चो धन-के बाटुन दीलो।

[ग] पूर्वी श्रेणी :

[४] उड़िया (१ करोड़ १० लाख)

जण-कर दुइ पुत्र थिला। ताङ्क मध्ये-रे ये (=जे) बयस-रे सान, से आपणा बाप-कू कहिला, बापा, मो बाण्ट-रे येउँ (= जेउँ) सम्पत्ति पड़िब, ताहा मो-ते दिआ। बाप आपणा विषय-कू सेमानङ्क भितरे बाण्टि देला।

[५] असमीया या आसामी (२० लाख)

(श, ष, स=ख़; च, छ=स; य, ज=ज़; दन्त्य और मूर्धन्य, उभयवर्ग दन्तमूलीय उच्चारित होते हैं)

कोनो एजन मानुहर दुटा पुतेक आछिल। तारे सरुटोरे बापे-कक कले, हे पितृ, सम्पत्तिरयि (=जि) भाग मोत पड़े, ताक मोक दिया। ताते तेओ आपोन सम्पत्ति सि-बिलाकक बाँटि दिले।

[६] बँगला (५ करोड़ ३५ लाख)

(क) 'साधु भाषा' अर्थात् साहित्य का गद्य—

एक व्यक्तिर दुइटी पुत्र छिलो। तन्मध्ये कनिष्ठ पुत्र पिता के कहिलो—पितः, सम्पत्तिर ये (=जे) अंश आमार हइबे, ताहा आमाके दिन। ताहाते तिनि आपन सम्पत्ति ताहादेर मध्ये भाग (बण्टन) करिया दिलेन।

(ख) बँगला 'चलती भाषा' (कलकत्ता तथा सारे बंगाल के शिक्षित समाज की बोलचाल की भाषा)—

एकजन लोकेर दुटी छेले छिलो। तादेर मध्ये छोटोटी बापके ब'ल्ले, बाबा आपनार विषयेर मध्ये ये (=जे) अंश आमि पाबो, ता आमाके दिन। ताते तादेर बाप तॉर (निजेर, आपनार) विषय-आशय तादेर मध्ये भाग क'रे (बँटे) दिलेन (दिले)।

(ग) ढाका (मानिकगंज या विक्रमपुर)—(च=ts, छ=s, ज=dz; घ झ ढ ध भ कंठनालीय स्पर्शध्वनि युक्त ग, ज, ड, द, ब; ह=कंठनालीय स्पर्श ध्वनि)—

एकजनेर दुइडि छाओयाल (=सावाल) आछिलो। तागो मोइद्धे छोटोडि तार बापेरे कोइलो, बाबा, आमार भागे ये (=जे) वित्ति-बेसाद परे, ता आमारे देओ। ताते तागो बापे तान विषय-सम्पत्ति तागो मोइद्धे बाइटा दिल्यान।

(घ) चट्टग्राम—(आदि का क, प=ऊष्म ख़, फ़,)—

ओगगोया माइन्ष्येर दुआ पोआ आछिल्। तार मोइद्धे छोडुआ तार ब-रे कइल, बा-जि, ॲओनर सम्पत्तिर मोइद्धे जेइ अंश आँइ पाइयम्, हेइ-इन् आँरे देओक। तअन तारार

बाप तारार मोइद्धे निजेर सम्पत्ति भाग करि दिल्।

(ङ) चाकमा—चट्टग्राम पहाड़ी इलाका—

एक जन तून् दिबा पोअ एल्। चिकन पोआवे ता बाबरे क-ल, बाबा, सम्पत्ति मर् भागे जे परे, म-रे दे। तार बावे तार जे एल, भाग दिल।

(च) मयांग या विष्णुपुरिया—मणिपुर राज्य—

मूनि आगो-र पूतो दूगो आछिल्। तानो दियोग्-ओराङ्-तो खुला आँगोइ बापोक्-ओराङ् मातूलो—बाबा, मि-पाइतुओ बार्खन्-सारुक् औत दिया-दे। तानोर बापोके दोन् (=धन) औत बागिया (=भागिया) दिया दिलो।

(छ) कोच-बिहार—

एक-जना मानसिर् दुइ-कोना बेटा आछिल। तार मद्धे छोट-जन उआर बापोक कइल, बा, सम्पत्तिर ये (=जे) हिस्सा मुइ पाइम, ताक मोक देन्। ताते ताँय ताँर माल-मात्ता दोनो बेटाक बाटिया-चिरिया दिल।

(ज) मानभूम—

एक लोकेर दुटा बेटा छिलो। तादेर मध्ये छुट्ट बेटा तार बापके बल्लेक, बाप हे, तोमार दौलतेर या (=जा) हिस्सा आमि पाबो, ता आमाके दाओ। ताते तादेर बाप आपन दौलत तादेर मध्ये बाखरा क'रे दिलेक।

[७] बिहारी-भाषा-समूह (३ करोड़ ७० लाख)

(क) मैथिली (१ करोड़)—

कोनो मनुख्यकें दुइ बेटा रहै-न्हि। ओहि-सँ छोटका बाप-

हीसा हमार निकसै, तओन हम-का दै-द्या । तौ बाप आपन रिजिक उन-माँ बाँट दिहिस् ।

(ख) बघेली या बघेलखण्डी—रीवाँ राज्य (४६ लाख)—

एक मनई-के दुइ लरिका रहैं । तौने-मा छोटकौना अपने बाप-से कहिस्, दादा, धन-मा जौन मोर हीसा होइ, तौन मोही दइ-देई । तब वा ऊन-का आपन धन बाँटि दिहिस् ।

(ग) छत्तीसगढ़ी या महाकोसली (३८ लाख), जिला बिलासपुर—

कोनो मनखे-के दुइ बेटवा रहिन् । उन-मॉ-ले छोटका-हर अपन ददा-ले कहिस्, ददा, माल मत्ता-के जौन मेरे हींसा मोर बाँटा-माँ परत-होही, तौन मो-का दे-दे । ओ वो-हर अपन माल-मत्ता उन-का बाँट दिहिस् ।

[ङ] मध्यदेशीय श्रेणी :

[६] हिन्दी-गोष्ठी या पश्चिमी-हिन्दी (४ करोड़ १० लाख)—

(क) हिन्दुस्थानी या हिन्दी—शुद्ध, 'अरबी-फारसी तथा संस्कृत शब्द वर्जित 'ठेठ हिन्दी' या 'खड़ी-बोली', दिल्ली अंचल की—

किसी मानुस-के दो बेटे थे । उन-में-से लहुरे बेटे-ने बाप-से कहा, हे बाप, आप-के धन-में जो मेरा बखरा हो, उस-को मुझे दे-दीजिये । तब उस-ने अपना धन उन-में बाँट दिया ।

(ख) शुद्ध उर्दू (मुसलमानी हिन्दी या हिंदुस्थानी)—

एक (किसी) शख्स-के दो बेटे थे । उन-में-से छोटे-ने

बाप से कहा, अब्बा-जान, आप-की जायदाद-में जो कुछ मेरा हिस्सा है, मुझ-को दे-दीजिये। चुनांचे उस ने अपना असासा दोनों-को तक़सीम कर दिया।

(ग) शुद्ध या साधु हिन्दी—

किसी मनुष्य-के दो पुत्र थे। उन-में-से छोटे ने पिता-से कहा कि, पिताजी, अपनी सम्पत्ति-में जो मेरा अंश हो, सो मुझे दे-दीजिये। तब उस-ने उनको अपनी सम्पत्ति बाँट दी।

(घ) चलती हिन्दी, सरल हिन्दी या बाजारू हिन्दुस्तानी (समग्र आर्यावर्त)—

एक आदमी-का दो बेटा था। उन-में-से छोटा बेटा बाप-को कहा, बाबा, आप-का धन-दौलत-में जो बखरा हमारा होगा, उसको हमें (हम को) दे-दीजिये। तब बाप (ऊ आदमी) अपना धन-दौलत दोनों-में बाँट दिया।

(ङ) बोलचाल की या जानपद हिन्दुस्थानी, जिला मेरठ—

एक आदमी-के दो लौण्डे थे। उन-में-तें छोटे-ने अपने बाप-सेत्ती कहा, ओ बाप, तेरे मरे पिच्छे जो-कुछ धन-धरती मुझें मिलेङ्गी, वा इभी दे-दे। बाप-ने दोनों लौण्डों-को अपनी माया बाँट दी।

(च) बाङ्गरू या जाटू (जिला कर्नाल)—

एक माणस-कै दो छोरे थे। उन्-मैं-ते छोट्टे-ने बाप्पू-तै कहिया (कह्या) अक्—बाप्पू हो, धन का जौण-सा हिस्सा मेरे बांड्डे आवै, से मन्नै दे-दे। तौ उस-ने धन उन्हैं बाँड दिया।

(छ) दकनी (या दखनी)—महाराष्ट्र तथा दक्षिणापथ में अन्यत्र बसे हुए उत्तर-भारत के मुसलमानों की भाषा—

एक आदमी-के दो बेटे थे। उन में-से छोटे छोरे-ने बोला, बाबा, मेरे भाग-का माल मेरे-कूँ दे। हौर उस-ने उनमें भाग पाड़ दिया।

(ज) ब्रजभाषा या ब्रजभाखा (मथुरा तथा अलीगढ़ जिले)—

एक जने-के द्वै (दो) बेटा हे। उन-में-तें छोटे-ने बाप-सूँ कह्यो कि, ए बाप, मेरौ जो बाँटु होतु-है, सो मोय दै-देउ। तब वा-ने मालु उन्हैं बाँटि दियौ।

(झ) कन्नौजी—

एक जने-के दोए लड़िका हते। उन-में-से छोटे-ने बाप-से कही कि, हे पिता, मालु-को हीसा जो हमारो चाहिये, सो देओ। तब उन-ने मालु उन्हें बाँट दओ।

(ञ) बुन्देली (जिला झाँसी)—

एक जने-के दो मोड़ा हते। और ता-में-से लोरे-ने अपने दद्दा-से कई, धन-मे-सें मेरो हिस्सा मो-खों देइ-राखो। ता-के पीछे ऊ-ने आपनो धन बरार दओ।

[१०] पंजाबी (पूर्वी-पंजाबी) (१ करोड ५५ लाख)

(क) पंजाबी साधु-भाषा—

इक्क मनुक्ख-दे दो पुत्त-सन्। अते उन्हाँ विच्चों छोटे-नै पिउ-नूँ आखिआ, पिता-जी, माल-दा जेहड़ा हिस्सा मैं-नूँ पहुँचदा है, सौ मै-नूँ दे-दिओ। अते उस-ने उन्हाँ-नूँ पूँजी वण्ड दित्ती।

(ख) डोगरी (पंजाब का पहाड़ी अंचल, जम्मू राज्य)—

इक आदमी दे दो पुत्तर थे। उ-दे-विचा निकड़ै-ने बब्बे-की आखिया जे, हे बापूजी, जायदाती दा जे हिस्सा मि-की पुजदा है, सौ मि-की देई देओ। ताँ उस-नै माल उने-की बण्डी दित्ता।

(ग) काँगड़ी (काँगड़ा ज़िला)—

कुसी माहणुए-दे दो पुत्तर थे। तिनाँ बिचा लौहकें पुत्तरें बब्बेकनें बोलिआ जे, हे बापू-जी, जे किछ घरे दे लट्टे फट्टे विचा मेरा हिसा होए, सेह मिञ्जो देओ। ताँ बब्बें तिनाँ-की अपणा लट्टा-फट्टा बण्डी दित्ता।

[११] राजस्थानी-गुजराती शाखा

(क) गुजराती भाषा, (१ करोड़ १० लाख)—

एक माणस-ने बे दीकरा हता। अने तेओ-माँ-ना नानाए बाप-ने कह्युं के, बाप, सम्पत-नो पहोंचतो भाग मने आप। ने ते-णे तेओ-ने पुञ्जी वहेंची आपी।

(ख) राजस्थानी (१ करोड़ ४० लाख)—

(ख) (अ) मारवाड़ी (जोधपुर राज्य)—

एक जिणौ-रे दोय डावड़ा हा। उवा-माँय-सूँ नैनकिऐ आप-रै बाप-नै कयो कै, बावो-सा, मारी पाँती-रो माल आवै, जि-को म-नै दिरावो। जरै उण आप-री घर-बिकरी उणा-नै बाँट दिवी।

(ख) (आ) जैपुरी—

एक जणा कै दो बेटा छा। वामैं-सू छोटक्यो आपका बाप-नै खई (=कही), दादा-जी, धन-हैं-सूँ जो बाँटो म्हारै बाँटे आवे,

सो मूँ-ने द्यो। वो आप-को धन वा-नै बाँट दीनू।

(ख) (इ) मेवाती—

कहीं आदमी-कै दो बेटा हा। उन-मैं-तैं छोटा-नै अपणा बाप-तैं कही, बाबा, धन-मैं-तैं मेरा बटको आवै, सो मुँ-नै बाँट दो। वैंह्-नै अपणु धन उण-नै बाँट दियो।

(ख) (ई) गूजरी या गुजुरी—(उत्तर-पश्चिम सीमान्त प्रान्त, पजाब और कश्मीर के भेड़ पालने वाले गूजरों या गुजरों की भाषा—मेवाती से मिलती है) हज़ारा ज़िले की गूजरी—

एकुण आदमी-का दो पूथ था। ते निक्का ने अपणा बाप्प-न केह्यो, ऐ बा-जी, तेरा मा-ळ-को मेरो हिस्सो, वह म-न दे। ते उस-ने माळ उन्हाँ-बिच्च बण्ड दित्तो।

(ख) (उ) मालवी—

कोई आदमी-के दो छोरा था। ऊन-मे-से छोटा छोरा-ने ओ-का बाप-से कियो के, दाय-जी, म्ह्-के म्हारो धन-को हिस्सो दै-लाख। ओर ओ-ने उन-मे अपना माल-ताल-को बाँटो कर-दियो।

(ग) (अ) भीली या भीलोड़ी (ईडर राज्य)—

एक आदम-न्ये बे सोरा अता। नें अणा-माँ-हा नोंने सोरे ई-ना बाप-नें केज्युँ (=कह्युँ), आता, मारे पाँती-एँ आवे ई तमारी पुञ्जी-नो फाग (=भाग), मय आलो। नें वणे पोता-नी पुञ्जी बेयाँ बाटी आल्यी।

(ग) (आ) खानदेशी (मराठी द्वारा प्रभावित)—

कोणी-एक माणस-ले दो आण्डोर व-हतस्। त्या-मा-ना

धाकला आप-ले बाप-ले म्हान्ना, बाबा, म-ना हिस्सा-ले जी जिनगी येई, ती मा-ले दे। आनी त्या-नी त्यास्‌ले जिनगी बाटी दि-दी।

[च] उत्तरी या पहाड़ी अथवा हिमाली श्रेणी :

[१२] पूर्वी-पहाड़ी, पूर्वी-हिमाली या नेपाली (अथवा गोर्खाली, या खस्-कुरा, या पर्वतिया)—(? ६० लाख)

एक जना मानछे-का दुई-भाई छोरा थिये। अनि तिनि-हरु-माँ-को कानछो चइँ-ले बाबु-लाइ भन्यो, बाबै, धन-सम्पत्ति-को मँ लाइ परने भाग मँ-लाइ देउ भनि। अनि त्येस-ले तिनि-हरु-लाइ आफनु जीविका बाँड़ि दियो।

[१३] मध्य-पहाड़ी या मध्य-हिमाली (? १० लाख)

(क) कुमाऊँनी (खस-परजिया उपभाषा, जिला अलमोड़ा)—

कै मैसा-क द्वी च्याल (=चेल) छिय। और उनों-में-इहँ काँसै-ल (=काँछै-ल) आपण बब-थै कय, ओ बब, आपण जाजात-में-हैं जो बाँट म्यर (=मेर) हुँ-छ, ऊ मी-कणि दी-दे। और वी-ल ऊनो-कणि आपनी जाजात (=जायदाद) बाँट दिय।

(ख) गढ़वाली—श्रीनगर—

कै आदमी-का द्वी नौन्याल छया। ऊँ-मा-न छोट नौन्याल-अन अपणा बाबाजी-मा बोले, हे बाबाजी, विर्सत-मान जो मेरो हिसा छ, सो मैं-सणी देव। तब ऊ-न अपणी विर्सत बाँट दिये।

[१४] पश्चिमी-पहाड़ी या पश्चिम-हिमाली भाषा-समूह—

विभिन्न उपभाषाओं को लेकर निम्नलिखित कुछ भाषाएँ इस श्रेणी में आती हैं:—

१—जौनसरी, २—सिरमौरी, ३—बघाती, ४—क्यैंुठाली, ५—सतलज श्रेणी की तीन उपभाषाएँ; ६—मण्डेयाळी या मण्डी राज्य की उपभाषाएँ, ७—कुलूई या कुल्लू प्रदेश की उपभाषाएँ, ८—चमे-आळी या चम्बा-राज्य की उपभाषाएँ, ९—भद्रवाही, १०—पाडरी।

(क) सिरमौरी—

एकी जने-रे दू बेटे थिये। कानछे बेटे आपणे बाव-खे बोलो—बापू, मेरे वाण्डे हिसाब मा-खे दे। तेणिये तिणी-खे हिसाब वाण्डे दिया।

(ख) मण्डेयाळी (मडी-राज्य)—

एकी मनुख-रे दूई गाभरू थे। मटठे गाभरू ए आपणे बाब्बा-साओगी बोल्या जे, माँ-जो लटे-फटे-री बाँड ये (=जे) आउणी, तेसा देई-दे। ताँ तेस-रे बाब्बे तेसरी बाँड लटेफटेरी तेस-जो देई दीती।

(ग) चमेआळी—चम्बा राज्य, गाद्दी उपभाषा—

अकी माहणु-रे दूई पुत्तर थीए। तिआँ-खाऊँ लौहकड़े पुत्तरे बब्बे-सेइते बलू—हे बापू, घर-बारी-रा हेसा जे मिञ्जो मुळदा हा, सो दे। ताँ उन्नी घर-बारी बण्डी दित्ती।

(घ) कुलूई—

एकी माणहू-रे दूई बेटे ती। तीन्हा-मंझे-न होच्छे बेटे

बापू-संघे बोलू, ई बाबा, माल-मता-री ये बाँड मू बे पुञ्जासा, मू-बे दे। तेब्बे तेइए तीन्हा-बे बाएडी धीना।

[अ–२] भारत के बाहर की भारतीय-आर्य भाषावली—

[छ] सिंहली :

सिहली भाषा पश्चिम-भारत की, लाड देश या लाट अर्थात् गुजरात की तथा सौराष्ट्र (या सोरठ) अर्थात् काठियावाड़ प्रान्त की और लाड़ या दक्षिण सिन्धु प्रदेश की प्राचीन प्राकृत से निकली है। ऐसा अनुमान किया जाता है कि सिहली से मागधी या बंगला का कोई सम्बन्ध नहीं है। मालद्वीपीय भाषा सिंहली की ही शाखा है।

(‘—अया। ` दीर्घ ए)

एकतरा मिनिहेकुट पुत्रयो दे-देनेक वूहृ। ओवून-गेन बालया पिया-ट कथा कोट, पियाणेनि, ओव-गे` वस्तुविन् म-ट अयिति वन कोटस म-ट देनुम‘नव‘यि कोयेय। ए-विट पिया तमा-गे` वस्तुर दरुवन् दे-देन-ट वेदा-दुन् ने` य।

[ज] Romany रोमानी या Gipsy जिप्सी भाषा :

यूरोप में प्रायः सभी जगह—ग्रीस, बलकान देशसमूह, हंगरी, युगोस्लाविया, जर्मनी, फ्रांस, स्पेन, रूस, पौलैंड और दूसरी जगह रोमानी लोग रहते हैं।

ब्रिटेन (वेल्स) के जिप्सियों में यह भारतीय आर्य भाषा जिस रूप में प्रचलित है, उसका नमूना—

सास्‌ येखेस्ती मानुशेस्तो दुई चावे।
थे एक-को मनुष्य-को दो शावक (बेटे)।
फेन्दास ओ लेङ्गेरो तारनेदेर लेस्ती
भनेसि (=कहा) वह उनका तरुणतर उनके
दादेस्ती— दादे, दे मन मीरो उलविबेन तीरे
तात-को— तात, दे मोकै मोर लाभ-पन तोर
(=मुझे) (=मेरा) (=भाग) (=तेरा)
बरवलिपेनास्ते। था फागेर्दस्‌ योव्‌ पेस्को
बलवत्‌-पन (=धन) से। तथा भाग-किया वह आपस-का
वरलिपेन्‌ था दीआस्‌ लेस्‌
बलवत-पन, (धन) एव (तथा) दिया (वह) तस्य (उसे)
ई फालेङ्गी।
उन भ्राताओं को।

नवीन या आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं के नमूने ऊपर दिये गये हैं। वैदिक (या प्राचीन भारतीय आर्य) > प्राकृत और अपभ्रंश (या मध्य युगीय भारतीय आर्य) > भाषा (या नवीन भारतीय-आर्य)—इस परम्परा को पकड़ कर, भारतवर्ष में आर्य भाषाओं का विकास हुआ। संस्कृत का स्थान एक प्रकार से वैदिक और प्राकृत के संधि मुहूर्त में अवस्थित है। नीचे वैदिक, संस्कृत, प्राकृत तथा अपभ्रंश में, ऊपर दी गई कहानी के अंश के अनुवाद दिये जाते हैं।

[१] आद्य-आर्य, वैदिक (छान्दस् या वैदिक संस्कृत), ई० पू० १२००*—

(उदात्त स्वर—अक्षर के ऊपर [।] चिह्न द्वारा प्रकट किया जा रहा है।)

मनुषस् त्वस्य (तुअस्य) द्वा सूनू आस्ताम्। तयोर् अवरजाः पितरम् अवदद्—यो मे भागस् तम् मे धेहि। उत जनिता तयोर् वि द्रविणम् अभाक्।

[२] संस्कृत (लौकिक संस्कृत, ई० पू० ६००, आनुमानिक)—

कस्यचिद् नरस्य (मनुष्यस्य, मानवस्य) द्वौ पुत्रौ आस्ताम्। तयोः कनीयान् पितरम् आह—पितः, भवतां वित्त-मध्ये यो भागो मया लब्धव्यस्, तम् मे देहि। ततोऽसौ स्वं वित्तं विभज्य पुत्राभ्यां प्रददौ।

[३] पालि (मध्य भारतीय-आर्य, प्रथम स्तर, ई० पू० आनुमानिक ३००)—

एकस्स मनुस्सस्स दुवे पुत्ता आसुं। तेसं कनिट्ठो—

---

* प्रयाग विश्वविद्यालय के संस्कृत-विभाग के अध्यापक बन्धुवर श्रीयुत क्षेत्रेशचन्द्र चट्टोपाध्याय ने वैदिक भाषा में यह अनुवाद कर दिया है।

पिता, तव धनस्स यो भागो मया लद्धब्बो होति, तं मयहं देही-ति—पितरं अवदि। ततो सो अत्तनो धनं विभाजेत्वा तेसं अदासि।

[४] प्राकृत (मध्य भारतीय-आर्य, द्वितीय स्तर, आनुमानिक ३०० ई०; शौरसेनी प्राकृत)—

एक्कस्स मणुस्सस्स माणवस्स दुवे पुत्ता आसी। ताणं मज्झे कणिट्ठेण पिदुणो सगासे कथिदं, पिद, तव (तवकेरकस्स, तुज्झ) धणस्स जो भागो मम बट्टदि, तं मे दीअदु। तदो तेण अप्पणो धणं तेसु (तेसं मज्झे) विभज्जिअ (बण्टिअ) दिण्णं।

[५] अपभ्रंश (शौरसेनी अपभ्रंश—पंजाब, राजपूताना, गुजरात, पश्चिमी उत्तर प्रदेश; आनुमानिक ९०० ई०)—

एक्काह मणुस्सह दुवि (दो) पुत्त अहन्त। ताण मज्झहिं (मद्धहि, मधहिं, महहिं) छोट्टएँ (छोट्ट-कण्णहि) बप्पह-कहु (बप्पह-कण्णहिं) कहिउँ, पिउ, तुज्झ (तव, तो, तवकेरह, तेरहि) धणाह जु भागु मज्झु (मॅ, मेरउ) होहिइ (हुइस्सइ), तं मे (मज्झु) दिज्जउ (देहु)। तउ बप्पें (बप्प-कण्णहिं) अप्पणु धणु पुत्ताण मज्झहिँ विभज्जिअ (वण्टिअ) दिण्णु (दिण्णउँ)।

[आ] दरद या पिशाच शाखा की आर्य भाषाएँ

[क] दरद शाखा की भाषाएँ :

[१] काश्मीरी

[।]—चिह्न द्वारा स्वरवर्ण के उच्चारणों की विशेषता प्रदर्शित

की जा रही है—

अकिस् महनिविस, आसि जह् न्यचिवि। तिमौ-मञ्जॅ दपु कूँसि—हिहि मालिस कि, हे मालि, म्य दिह दनुकु (=धनु-कु) हिसू, यूस् म्य वाति। तव-पत तमि तिहन्दि-खातर दन (=धन) बागरोव न (=भागरोव न)।

काश्मीरी की कई उपभाषाएँ हैं, साधु या शुद्ध काश्मीरी इनसे बहुत कुछ दूर चली गई है। इन उपभाषाओं के नाम हैं—कष्ट-वाड़ी, पोगुली, सिराजी तथा रामबनी।

[२] शीणा—

दरद् श्रेणी की भाषाओं का निजस्व या शुद्ध रूप शीणा में ही बहुत कुछ बाकी है। शीणा भाषाएँ गिनती में सात हैं—गिलगिती, आस्तोरी, चिलासी, गुरेजी, द्रास इलाके की शीणा, डाह हनू इलाके की शीणा, और गिलगित के उत्तर-पश्चिम इलाके की शीणा।

केवल गिलगित की शीणा का ही नमूना दिया जा रहा है—

को-एक मनुजरो-के दू दार आसिले। ऐनेजो चूनोसे तोमो बावेते रेगो—बाबो, जावेइ बागो माते दे, कचाक मात वान। नेह् रथोसे तोमे असबाब ऐनो मजा बागेगो।

[३] कोहिस्थानी—

इस गोष्ठी में पंजकोरा, स्वात और सिन्धु कोहिस्थान अंचल की कई उपभाषाएँ आती हैं—यथा गारबी, तोर्वाली और मैयाँ।

गारबी का नमूना—

अक मेषा दू पूर्ट आषु । लकोट पूट तनी बब-क मनो—मै-कि माल-मे तनी डाह् द। तन तनी माल दुएर डाह् केर।

[ख] काफिर श्रेणी की दरद भाषाएँ :

इस शाखा में पाँच भाषाएं आती हैं, यथा [१] बशगली, [२] वै-अला, [३] वँसि-भे'रि या भे'रोन , [४] अशकुन्द, एवं [५] कलाशा-पशै उपशाखा के अन्तर्गत पाँच उपभाषाएँ (५क) कलाशा, (५ख) गवर-बति या नरसाती, (५ग) पशै, लघमानी या देह्गानी, (५घ) दीरी तथा (५ङ) तीराही। इनमें केवल बशगली (काफिरिस्तान या नूरिस्तान के अन्तर्गत कामदेश-अंचल की भाषा) का नमूना दिया जाता है।

[१] बशगली—

ए मञ्जे दू पित्र अजम्मे । अमने ँा पमिजु कणिष्ते तोत-ओस-तँ गिजी कड़स—एह् तोत-अ, तो लतरि पमिजु ईँ बड़िस्ताँ गत्स। तोत-एज़े अमने ँा। पमिज़ बड़ेक्ती प्रस्तै।

[ग] खो-वार, चित्राली या अर्निया शाखा—

इस शाखा के अन्तर्गत एक ही भाषा है।

ई मो ा ष्-ओ जू ‍फ़ि.फ़े. ा अस्तनि। हतेत्-अन् मुजि त्सि रो ा तत्-ओते रेस्तै—ऐ तत् , म-ते म बष्-ओ तन् माल्-आर् , कि म-ते तरिरन्, देत्। इस हतेत्-अन् मुजि तन् दौलत्-ओ बोफ़ि. तै।

[इ] ईरानी शाखा की आर्य भाषाएँ

[क] पष्तो (पश्तो, पख़्तो)—

पठान या अफगानों की भाषा । भूतपूर्व अंगरेजी-राज्य में पश्तो-भाषियों की संख्या १५॥ लाख थी, एव अफगानिस्तान में २३॥ लाख से कुछ ऊपर, कुल मिलाकर ३९ लाख । इसकी कई उपभाषाएँ हैं ।

द यौ सड़ी द्ब म्क़ामन (गामन) चू । क़्शर वर-त बुवेचि—ऐ सार, द खुपल माल चि-श (चि-त्स) बखुर मे रसी, मा-ल रा-क । जोर हघु पे वेश वुक ।

[ख] ओर्मुड़ी या बरगिस्ता—

पठानों के देश, वज़ीरिस्तान अंचल के अल्प-संख्यक लोगों की भाषा है । इस भाषा से पश्चिमी-ईरान की कुर्दी तथा दूसरी प्रान्तिक भाषाओं का सम्बन्ध अत्यन्त घनिष्ठ है—आसपास की पश्तो प्रभृति स्थानीय पूर्वी ईरानी भाषाओं से नहीं ।

[ग] बलोची—

यह भाषा बलोचिस्तान में प्रचलित है । लेकिन पूर्वी-ईरान तथा सिन्धु-प्रदेश में और दक्षिण-पश्चिम पंजाब में भी थोड़े-बहुत बलोचभाषी मिलते हैं । बलोची की दो मुख्य उपभाषाएँ हैं । पश्चिमी या खास-बलोची, और पूर्वी या भारतीय बलोची । द्राविड़गोष्ठी की ब्राहुई भाषा दोनों के बीच में दीवार सी खड़ी है। बलोची-भाषियों की संख्या ७ लाख से कुछ ऊपर होगी ।

नमूना—पूर्वी बलोची (लोरालाई, बलोचिस्तान) :—

मड् दे दो बछ् अथस्थ। श_अमॉ हिआ-फ़ ख़िसाँ खी अथ, फ़िथा-र ग्वश थ खी, फ़िथ-मनी, माल बहर खी मई बी, मना दै। गुड्डा माल बहर ख़ुथो दाख़-इश।

[घ] घल्चह भाषाएँ—

मध्य-एशिया की पामीर-अधित्यका में कई ईरानी भाषाएँ बोली जाती है, ये पश्चिमी-ईरानी (फारसी, कुर्दी) तथा पूर्वी-ईरानी (पश्तो, बलोच आदि) से अलग हैं। इनकी संख्या सात है—यथा, [१] वख़्ी, [२] शिघ्नी, [३] सरीकोली, [४] जेबकी, संगलीची या इशाकश्मी, [५] मुनजानी, [६] युद्घा तथा [७] यग्नोबी।

[ङ] पारसी, फ़ारसी, या नव्य-पारसीक—

यह ईरान की सर्वजन-व्यवहृत साधु-भाषा है, और भारतवर्ष के मुसलमानों की संस्कृति की प्रधान वाहिका है। नीचे पहली पंक्ति में भारत में प्रचलित उच्चारण (मध्य-युग में ईरान से जो उच्चारण आया था, उस) का अनुसरण करके, और दूसरी पक्ति में ईरान में प्रचलित आधुनिक उच्चारण का अनुसरण करके छोटे अक्षरों में, हिन्दी प्रतिवर्ण दिया जा रहा है। [ ]-कोष्ठक के अन्दर ईरान में बहु-प्रचलित अरबी शब्द (फारसी शब्द के रूप में) भी दिया जा रहा है।

मर्दुमे-रा	[शख़्से-रा]	दो	पिसरान
म्यार्दोमी-रआे	[श्याख़्सी-रआे]	दो	पेस्यारहआे

बुदन्द । कूचकतर अज़ आनान
बोद्यान्द । कुच्याकत्यार अयाज्व ऊन
पिदर्-अश्-रा गुफ्त कि, अय् पिदर !
पेद्यारयाश रओ गोफ्त कि, एइ पेद्यार !
पारः-ए- जायदाद्-ए-शुमा कि
पओरे-ए- जओएदओद्-ए-शोमओ के
बराय-ए-मन बाशद्, म-मरा बि-दिह ।
ब्यारओये-म्यान बओश्याद्, म्या-रओ बे-देह ।
आन मरदुम [शख्स] बर
ऊन म्यारदोम [श्याख्स] ब्यार
पिसरान्-ए-खेश जायदाद-अश्-रा
पेस्यारहओ-ए-खीश जओएदओद्याश-रओ
बह् रः [तक्सीम] कद् ।
ब्याहरे [त्याघसीम] क्यार्द ।

[२] शेमीय भाषा—अरबी

शेमीय-गोष्ठी कोई भी भाषा भारतवर्ष में प्रचलित नहीं है। अरबी इस परिवार की प्रधान भाषा है। इसके अलावा हिब्रू या प्राचीन यहूदी भाषा और इससे सम्बन्धित फिनीशीय तथा कार्थाजिनीय भाषा, सिरीय भाषा (प्राचीन और अर्वाचीन), प्राचीन बाबिलन की (आक्कादीय) और असीरिया या असुर देश की भाषा, दक्षिण-अरब में हिमयारी या साबीय भाषा, और अबिसीनिया या इथिओपिया की प्राचीन तथा आधुनिक

भाषाएँ—ये इस परिवार की भाषाएँ हैं। अरबी कुरान की भाषा है, भारतीय मुसलमानों के धर्म और धर्म-सम्बन्धित संस्कृति की भाषा है। फारसी के माध्यम से अरबी भाषा ने परोक्ष में भारत की भाषाओं पर एक विशेष प्रभाव विस्तार किया है। भारत के मुसलमानों में अरबी की चर्चा विशेष रूप से प्रबल है, इसीलिए अरबी (प्राचीन साहित्यिक अरबी) का भी एक नमूना दिया जाता है।

'इनसानुन	कान,	ल-हु	-बनानि।
मनुष्य	था	इसके	पुत्रद्वय (पुत्रौ)

व-काल	'अस्व घरु-हुमा	लि-'अबीहि—
और-कहा-उसने	उन-में-कनिष्ठ	उसके पिता के प्रति—

या	'अबी,	'आत्वि-नी	-ल-क्विस्म
हे	मेरे पिता,	दो मुझे	वह हिस्सा

ल्-लधी	युस्वीबु-नी	मन्-'अल्-मालि।
जो	पहुँचता है मुझे	उस सम्पत्ति से

फ क्वसम	ल-हुमा	माईशत-हु।
एवं बाँट दिया उसने	उनके लिए	अपनी सम्पत्ति को।

[३] अज्ञातमूल बुरुशास्कि भाषा

बुरुशास्कि या खाजुना भाषा उत्तर-काश्मीर के हुञ्जा नगर अंचल में प्रचलित है (पृ० ४१ देखिये)।

हिन्	हिरे	अलतन्	यू	बुम्।
एक	मनुष्य के	दो	पुत्र	थे।

इने	जुट	यी	यूयर	सेननीमी—
वह	छोटा	पुत्र	पिता को	कहा—
ले	अघा,	गूइमो	गुसे	माल
हे	पिता,	तुम्हारी-अपनी	इस	सम्पत्ति
त्सुम्	जा-अर्		देशकलतस्	बीकिह्
से	मुझे		निकलता है	यदि
जा-अर्	जऊ।		इने	हिर्
मुझे	मुझे दो।		उस	मनुष्य ने
ईमो	माल		तरंग	इत्तिमी।
अपनी-निजी	सम्पत्ति		बाँट	दी।

[४] द्राविड भाषाएँ

[क] तमिल या द्रमिल (न' र' = 'तालव्य' न; र, ल = मूर्धन्य ळ)

ओरु मनु'षनु'क्कु इरंडु कुमार र इरुन्दारगलु। अवरगलु-इल् इळैययवन' तगप्पन्'-ऐ नोक्कि—तगप्पन्'-एए, आस्तियिल एन'क्कु वरुम् पङ्ग्इ एन'क्कुत तर-वेंडुम्, एन'र'ान'। अन्दप्पडि अवन् अवरगलु-उक्कुत्-तान् आस्तियै-प्-पङ्गिट्टुक्-कोडुत्तान'।

[ख] मलयालम या केरल—

ओरु मनुष्यन्तु रंडु मक्कलु उंड-आय्-इरुन्न। अदिल् इलयवन् अप्पनो ्डु—अप्पा, वस्तुक्कलिवल् एनिक्कु रवर एं ्डुन्न पङ्ग् तरे ्णमे, एन्न पर'ञ्ञ। अवन्-उम् मुदलिये अवर्क्कु पगुदि-चेय्दु।

[ग] कन्नड़ या कर्णाटक—

ओब्ब मनुष्यनिगे इब्बरु मक्कलु-इद्दरु। अवर-अल्लि चिक्कवनु तन्देगे-तन्देये, आस्तियल्लि ननगे बर-तक्क पालन्नु ननगे कोडु, अन्दाग, बदुकन्न अवरिगे पाल्-इट्टनु।

[घ] तेलगु या आन्ध्र—

वोक मनुष्यु-नि-कि यिद्दरु कुमारु-लु वुण्डरि। वारि-लो चिन्नवाडु—ओ तण्ड्रि, आस्ति-लो ना-कु वच्चे पालु यिम्म-अनि, तण्ड्रि-तो चेप्पिन्-अप्पुडु आयन्, वारि-कि तन आस्ति-नि पञ्चि पेट्टेनु।

[ङ] ब्राहुइ (कलात बलोचिस्थान)—

बन्दघ-अस्-ए इरा मार् अस्सुर। ओफतिआन् चुनका मार् तेना बाव-ए पारे कि, बावह, मालान् गिड़ा-अस् कि कना बशाख मरेक्, कने एते। ओ तेना कटिआ-ए ओ फ ति-तो बशाख-करे।

इन चार उन्नत और साहित्य में व्यवहृत द्राविड भाषाओं और एक अनुन्नत भाषा ब्राहुइ के अतिरिक्त इस परिवार की अन्य-भाषाओं (गोंड, ओराओं, कन्ध, मालेर, तुलु, कोडगु, तोदा, आदि) के नमूने नहीं दिये जा रहे हैं।

[५] आस्ट्रिक अथवा दाक्षिण या निषाद् भाषाएँ

[१] कोल या मुण्डा शाखा :

(क) 'हड़' या संथाली (':क, :च,' :त या :प'—युक्त 'निपीड़ित' व्यंजन—ध्वनियाँ; ॆ—अंगरेजी hut, Son शब्दों की स्वरध्वनियाँ।)

मि:त् हड़-रयान् बारेआ कोड़ा हपन्-किन् ताहेकान्-ताए-आ। आर उन्-किन् म-त-रया हुडिञ्:-च्-द आपात्-अया मेताद्-एआ—आ बाबा, इञ्-रया पाड़ाओ:क् मेना:क्-आ:क्-रेआ:क् बाख्रा दान्-अयामका-तिञ्-मया । आद ओौई दोरि-त्या:त-अया होटिञ्-आ:त-किन्-आ ।

कोल शाखा की दूसरी भाषाएँ संथाली से घनिष्ट रूप से सम्बन्धित हैं, इनमें, पार्थक्य उतना नहीं है। ज़रा दूर होने के कारण केवल कुर्कु-भाषा कुछ पृथक् हो गई है, और जुआङ, शबर तथा गदब साधारण मुण्डा के रूप और प्रकृति से कुछ और अधिक दूर हो गई हैं।

[२] मोन ख्मेर शाखा :

[क] खासी या खासिया—

ला-दोन्	उ-वेइ	उ-ब्रीव,	उ-बा
था-वहाँ	एक	मनुष्य,	जो(= जिसके)

ला-दोन	आर—	ङ्नू	किंखुन्
थे	दो	जने	सन्तान
शिन्-राङ्।	उ-बा	खाद्दुह	उ ला-ओङ,
पुरुष।	जो	अंतिम(=छोटा)	वह बोला
हा	उ-क्यपा	जोङ्-उ—	को-पा,
प्रति	पिता	अपने,	पिता,
आइ-नोह्	हा	डा	का
दे-दो	प्रति	मुझे	वह
ब्यन्ता	का-बा	हाप्	इआ
हिस्सा (बॉट)	जो	पड़ता है	प्रति
डा।	ते	उ	ला-प्यन-इआ-ब्यन्ता
मुझे।	तब	उसने	बाँट-दिया

हा	कि	काथा	उ	दोन्।
प्रति	उन्हें	जो कुछ	वह(=उसका)	था।

[६] किरात या भोट-चीन परिवार की भाषाएँ

[क] बोद् अर्थात् भोट या तिब्बती :

(दबुस् या यू या मध्य-तिब्बत, सिकिम, भोटान, खम्स या पूर्वी-तिब्बत, तथा लदाख या पश्चिमी-तिब्बत)—

पहली पंक्ति में तिब्बती अक्षर-विन्यास का प्रत्यक्षीकरण दिया गया है, इससे ईसा की सातवीं-आठवीं शताब्दी का भोट या तिब्बती उच्चारण समझ में आ जायगा; दूसरी पंक्ति में मध्य-

तिब्बती अंचल में प्रचलित आधुनिक उच्चारण दिया गया है; और तीसरी पंक्ति में शब्दशः हिन्दी अनुवाद है।

मि झिग-ल बु ग ञिस् योद्-प रेद्।
मि शिक्ला पू ञी ग्यो पा रे।
मनुष्य एकके पुत्र दो थे।

दे-दग् लस् छुङ्-ब देस् रङ्-गि
ते-दाक्-ल्या छुङ्-वा ते राङ्-गि
उनमे-से छोटा उसके द्वारा अपना

फ-ल भूस् प, ङ-इ यब्,
फा-ला श्यू-पा ङाइ यार्,
पिता को बोला मेरे पिता

ङस् थोब पःइ नोर् स्कल्
ङ्या थोप्-पै नोर् काल्
मेरे द्वारा लेने का धन भाग

ङ ल ग्नोङ झिग्। खोस्
ङा-ला नोङ्- शिक्। ख्यो
मुझे दो। उसके द्वारा

रङ्-गि नोर् दे-दग्-ल ब्गोस्-सो।
राङ-गि नोर् ते-दाक्-ला ग्यो-सो।
अपनी सम्पत्ति उन्हें बाँटी-गई।

भोट या तिब्बती की उपभाषाएँ, और इससे घनिष्ट रूप से सम्बन्धित निम्नलिखित भाषाएँ और बोलियाँ विद्यमान हैं; (१) बाल्ती या बाल्ति-स्थान की भोट; (२) पुरिक;

(३) लदाखी या पश्चिमी तिब्बती; (४) लाहुली; (५) देन-जोङ्-के या सिकिम की तिब्बती; (६) स्पिति की तिब्बती, (७) ञम्कत्; (८) जड; (९) गढ़वाल की भुटिया; (१०) कागते; (११) शर्पा (उत्तर-पूर्व नेपाल), (१२) ल्हो-के या भोटान की भुटिया; (१३) खाम् या पूर्वी- तिब्बती।

[ख] हिमालय के दक्षिणी अंचल की भाषाएँ :

ये दो श्रेणी में पड़ती हैं यथा—

[१] शुद्ध हिमाचलीय भोट-चीन भाषा—

इस श्रेणी में नेपाल की गुरुङ्, मगरी, मुरमी, सुनवार, नेवारी, पाहरी, लेप्चा या रोङ, और टोटो हैं। इनमें एकमात्र नेपाल उपत्यका की नेवारी ही सुसभ्य और साहित्य रसिक जाति की भापा है (? ३-४ लाख) बाकी सभी में चर्चा और साहित्य का अभाव है । बँगला (मैथिली) और देव-नागरी से सम्बन्धित एक विशेष वर्णमाला में नेवारी भाषा लिखी जाती थी। अब नेवारी के थोड़े बहुत मुद्रण-कार्य में देवनागरी का ही व्यवहार होता है । इसमें बहुतेरे संस्कृत के शब्द हैं।

(क) नेवारी—

छ म्ह	मनुष्य या	काय	म-चा
एक-जन	मनुष्य के	बालक	सतान
नी-म्ह	द-र्स्यॅ	चो न।	चिक-ढि-म्ह
दो-जने	हुए	थे।	छोटा

कायँ	थओ	बबा-या-के,		जि-गु
पुत्र-द्वारा	अपने	पिता को		मुझे
अंश-भाग	जि त	बियादिस,	ध क	धाल
अंश-भाग	मुझे	दो,	कहकर	कहा,
धाय तुनुँ	बबा म्हुँ	अंश-भाग		बिल।
कहकर-कुछ-बादही	पिता-द्वारा	अंश-भाग		दिया।

[२] ऑस्ट्रिक (दक्षिण)—परिवार की भाषाओं से प्रभावित Pronominalised अर्थात् सर्वनाम-ग्रन्थन-मूलक हिमाचलीय भोट-चीन भाषावली इन श्रेणियों में पड़ती हैं; यथा—[क] पूर्वी या 'किरान्ती' उपश्रेणी—(१) धीमाल, (२) थामी, (३) लिम्बु, (४) याखा, (५) खम्बु, (६) बाहिङ, (७) खम्बु से सम्बन्धित १५ और उपभाषाएँ, (८) राई, (९) वायु, (१०) चेपाङ, (११) कुसून्द, (१२) आमु तथा (१३) थाकस्य। [ख] पश्चिमी उपश्रेणी में पड़ती हैं—(१) कनौरी, (२) कनाशी, (३) मनचाटी या पटनी, (४) चम्बा लाहुली, (५) रङ्गोली, गोन्दला या तिनन्, (६) बुनान्, (७) रंकस् या सौकिया खुन, (८) दार्मिया, (९) चौदांसी, (१०) ब्यांसी तथा (११) जंगली। इन अनुन्नत भाषाओं को थोड़े-थोड़े लोग बोलते हैं।

[ग] उत्तर-आसाम की भाषाएँ :

ये भाषाएँ आसाम के पहाड़ी अंचल, हिमालय के सानु देश में विद्यमान हैं। (१) आका या ह्रस्सो (२) आबर-मिरि तथा दफ्ला (३) मिश्मि—तीन कबीलों की भाषाएँ—चुलिकाटा या तायिङ मिश्मि, दिगारु मिश्मि और मीजू मिश्मि।

[घ] बड या बोडो श्रेणी :

किसी समय समग्र पूर्वी-बंगाल और पश्चिमी-आसाम में बोडो-भाषी लोग बसते थे। आर्य-भाषा के प्रसार के फल-स्वरूप इसका क्षेत्र विखण्डित हो गया है। (१) उत्तर-पश्चिमी आसाम में, भोटान के दक्षिण में मेछ या बोडो हैं, (२) ब्रह्मपुत्र के दक्षिणी घुमाव के पूरब राभा और गारो (आचिक् आदि विभिन्न उप-भाषाएँ) हैं, (३) त्रिपुरा राज्य में टिप्रा या त्रिपुरा (४) सिलचर के उत्तर मे दीमा-सा, और (५) जैन्तिया पहाड़ के पूरब, गौहाटी और नौगाँव के बीच, लालुङ्, होजाई और बड हैं। ६ लाख से ऊपर लोग आज भी इस श्रेणी की भाषाओं को बोलते हैं।

(४) दीमा-सा (उत्तरी काछाड़ जिला)—

शू-बाङ	शाओ-शो	बो-नी	ब-शा-राओ
मनुष्य	एक-जन	उसके	पुत्रसमूह
शाओ-गिन्नी	दोङ्-बा।		का-शी-ब
दो-जने	वहाँ-थे।		छोटा
बो-नी	बु-फ	जुङ्	तुङ्-बा,
अपने	पिता के	निकट	गया,
ई-लै	ति-बा,	‘एह	बाबा,
इस-प्रकार	बोला,	‘ऐ	पिता,
दनाङ-हा	लिङ	अङ-के	नि-नी
बाद में	तुम	मुझे	अपनी

बोश्तु-नी गजेर् री-नुङ
सम्पत्तिका (वस्तु का) आधा दोगे
दुहा री-मा हम-नुङ ।' बो-नी-फारङ
अन्न देने से अच्छा-हो ।' इस पर
बु-फ बो-नी बोश्तु रोन्-बा ब-शा
पिता अपनी सम्पत्ति भाग-किया पुत्र
काशी-ब-के गजेर् री-बा ।
छोटे को आधा दिया ।

[ङ] नागा-श्रेणी की भाषाएँ :

बड या बोडो एवं नागा श्रेणी की भाषाएँ एक दूसरे से घनिष्ट रूप से सम्बन्धित हैं। शुद्ध और दूसरी श्रेणी की भोट-ब्रह्म भाषाओं से मिश्रित—ये दो श्रेणियों की नागा भाषाएँ हैं । प्रायः तीन लाख लोग शुद्ध नागा बोलते हैं; इसकी निम्नलिखित शाखाएँ हैं—(१) पश्चिमी—अंगामी, सेमा, रेङ्मा, केझामा; (२) मध्य—आओ, ल्हाता, तेङ्सा, थुकुमि और यचुमि, (३) पूर्वी—आङ्वानकु आदि ८ उपभाषाएँ । मिश्र नागा भाषा नीचे लिखी श्रेणियों में आती है—(१) नागा-बोडो—एम्पेओ, काबुइ और खोइराओ, तीन उपभाषाएँ; (२) नागा-कुकि—मिकिर, सोपवोमा, ताङ्खुल् , तथा चार और उपभाषाएँ।

[च] काचिन शाखा :

इसमें सिङ्फो या काचिन भाषा आती है। उत्तर-पूर्वी आसाम

और उत्तरी-वर्मा के सीमान्त में यह भाषा बोली जाती है। हुकङ-नदी की उपत्यका इसका केन्द्र है। इसे एक प्रकार से भारत के बाहर की भाषा कहना चाहिए।

[छ] कुकि-चिन शाखा (३० से ऊपर भाषाएँ और उपभाषाएँ)—

(बॅंगला (भारतीय) नाम बुकि या कुकी; चिन=Khyeng ख्येङ या छ्यॆन, इसका बर्मी नाम है।)

[१] Meithei मेइतेइ या मणिपुरी—

मि आ-मा-गि मा-चाा नि-पाा आ-नि
मनुष्य एकजन के उसकी-संतान पुरुष दो

लाइ-राम्मि। मा-बुङा-नि-गि मा-राक्-ताा
थे। दोनो के बीच

मा-नाा ओ आ-तोम-बाा आ-दु-नाा
उसका-पुत्र कनिष्ठ उसके द्वारा

मा-पाा-दाा हाइ, पाा-बाा,
उसके पिता को बोला, बाप,

आइ-नाा फाङ-गा-दा-बाा लान
मेरे द्वारा प्राप्तव्य सम्पत्ति

सारुक्, आ-दु आइ-ङोन्-दाा पि-बि-यु।
अंश, वह मुझे दीजिए।

आ-दु-दाा मा-पाा-नाा मा-खोइ
तब उसके पिता-द्वारा उन्हें

आ-नि-गि	दा-माक्	लान्-थुम	येल्-ले ।
दोनो जन के	लिए	सम्पत्ति	बाँट दिया ।

लुशेइ भाषा भी इसी कुकि-चिन् शाखा के अन्तर्गत है । मणिपुरी या मेइतेइ, भिन्न भिन्न चिन् उपभाषाएँ (उत्तर, मध्य और दक्षिण, इन तीन श्रेणियों में विभक्त हैं—लुशेइ मध्य चिन् श्रेणी के अन्तर्गत है), और पुरानी कुकि—ये कुकि-चिन् शाखा की श्रेणियाँ हैं । मेइतेइ की अपनी प्राचीन लिपि थी, यह भारतीय लिपि से उत्पन्न हुई थी । लेकिन प्रायः २०० वर्षों से मेइतेइ बँगला लिपि में ही लिखित और मुद्रित हो रही है ।

[ज] म्रन-मा (ब्यम्मा) या बर्मी भाषा—

पहली पंक्ति में बर्मी-लिपि के मूल अक्षरों की हिन्दी प्रतिलिपि दी जाती है—इससे ईसा की ११वीं सदी का बर्मी उच्चारण मिलेगा । दूसरी पंक्ति में आधुनिक बर्मी उच्चारण, और तीसरी पंक्ति में हिन्दी अनुवाद दिया जा रहा है ।

लू	त-योक्	न्हिक	साः	न्हच्-योक्
लू	टा-यौक	न्हेक्	था	न्हित्-यौक
मनुष्य	एक-जन	के	पुत्र	दो-जन

र्हि-एञ् ० ।	ङ्य्-सो	साः-क
शी-इ ।	ङ्गोइ - द्ओ	थागा
(वाक्य-परिपूरक) ।	छोटा	पुत्र बोला

मि-मि-एञ् ।	अ-भू-कुइ	ई-कै-
मि-मि-इ,	आफागो	इ-ग्या-
उसके अपने	पिता को	यह

सूइ	प्रो-ले-एञ्,	अ-भ,
दो	प्यओ-लाइ-इ,	आ-फा,
इस प्रकार	बोला	पिता

क-नूइप्	र-थुइक-सो
चु-नोक्	या ठेक-दओ
दास को (मुझको)	प्राप्तव्य
उच्चा-पच्चञ:	म्या:-कुइ
औक्सा-प्यित्सि:	मिया:-गो
सम्पत्ति	सारे-मे

कु-नूइप्-कूइ	पे-पा।	थुइ-अ-खा
चु-नोक्-गो	पाइ-पा।	ठो-आ-खा
मुझको	दे दो।	तब
अ-भ	प्रच्-सू-क	मि-मि-एञ
आ-फा	प्यित्-थु-गा	मि-मि-इ
पिता	होता है इसलिए	निज
उच्चा-पच्चञ्:	म्या:-कुइ	के-रथे-
औकसा-प्यित्सि:	मिया:-गो	कुई-इओये
सम्पत्ति	सारे में से	बाँट-करके

पे: लुइक्-एञ्।
पे-लेक्-इ।
दिया था।

भोट-चीन भाषा परिवार में बर्मी साहित्य की अन्यतम प्रधान भाषा है। ईसा की दशवीं सदी में यह पगान के राजा अनिरुद्ध

और उसके पुत्रद्वय राजा चोलु (सओलु) और राजा क्यन्-चच्-साः (चन्-ज़ित्-था) के काल में जब यह लिपि-बद्ध हुई, तब आस्ट्रिक जाति के मोन् लोगों में प्रचलित भारतीय लिपि को बर्मियों ने ग्रहण किया। राखाइङ् या आराकानी तथा कुछ और उपभाषाएँ बर्मी के अन्तर्गत हैं। इनमें मग उपभाषा चटगाँव के पहाड़ी इलाके में विद्यमान है।

[क] भोट-चीन-भाषा परिवार के श्याम-चीन विभाग या शाखा के अन्तर्गत दै या थाइ भाषा—

[१] आहम या असम (अहम)—

१२२८ ई० में उत्तरी बर्मा से आसाम में आकर अहम-जाति ने आसाम-प्रदेश को जीता, और अहम-वंशीय राजागण अंगरेजों के काल तक आसाम में राज्य करते रहे। अहमों ने धीरे-धीरे आर्य-भाषा आसामी स्वीकार की—अहम-भाषा अब प्रायः लुप्त हो गई है। इसकी अलग लिपि थी, इस लिपि में प्राचीन अहम 'बुरञ्जी' या इतिहास के कुछ ग्रंथ मुद्रित भी हुए हैं। असम या अहम नाम से 'आसाम' प्रदेश के नाम की उत्पत्ति हुई है।

[२] खामूती—

उत्तर-पश्चिम आसाम तथा उत्तर-बर्मा में बिखरी हुई अल्प-संख्यक उपजातियों की भाषा है।

[३] नोरा, ताइरङ्, आइतोनिया, थाकियाल—

उत्तर-पश्चिम आसाम में प्रचलित अति अल्पसंख्यक लोगों

की भाषा-खाम्ती से सम्बन्धित है।

[४] शान—

उत्तर-बर्मा में दस लाख से ऊपर लोगों की भाषा है। श्यामी और अहम से घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित—शान को श्यामी भाषा का ही रूप-भेद कहा जा सकता है। बर्मियों के सम्पर्क में आने के फलस्वरूप शान भाषा बर्मी अक्षरों में ही लिखी जाती है। खाम्ती भी उसी प्रकार बर्मी लिपि का व्यवहार करती है।

———

परिशिष्ट [ख]

भारत-रोमक वर्णमाला

(An Indo-Roman Alphabet)

भारत की सारी भाषाओं को रोमन या रोमक अक्षरों में लिखने का प्रस्ताव बहुत दिनों से चला आ रहा है। यह प्रस्ताव ऊपरी दृष्टि से इतना अनावश्यक और राष्ट्रीयता-विरोधी है कि हमारे देश में सभी इस प्रस्ताव की बात सुनते ही इसे राष्ट्रीयताबोध-वर्जित पागल का प्रलाप कह कर उड़ा देते हैं, इसके सम्बन्ध में कोई बात सुनना नहीं चाहते हैं। लेकिन यह प्रस्ताव उठाया गया है। यद्यपि अब तक मुट्ठी भर लोग ही इसके पक्ष में हैं, और देश की जनता इसके बारे में उदासीन है या इसकी विरोधी है, फिर भी मुझे लगता है कि, शिक्षित लोगों की दृष्टि धीरे-धीरे, बहुत धीरे, इधर आकर्षित हो रही है। तुर्की में आतातुर्क गाज़ी कमाल या कमाल पाशा ने रोमन हरफ चलाया है, सभी उनकी तारीफ कर रहे हैं—समग्र अरबी कुरान भी तुर्कों ने रोमन हरफों में छापा है। ईरान या फारस में भी रोमन अक्षरों को स्वीकार करने का प्रश्न उठा है, और फारसी भाषा में यूरोपीय स्वरलिपि के व्यवहार होने के कारण उस स्वरलिपि में जो फारसी गाने प्रकाशित होते हैं, मजबूरन वे रोमन हरफों में ही लिखित और मुद्रित हो रहे हैं। एक सुप्रतिष्ठित भाषा के अक्षरों को बदल कर रोमन अक्षरों को स्वीकार किया

जा सकता है, अखबारों के पाठकों की समझ में यह बात आ रही है। बाहर के राष्ट्रों के लिए यह बात अब नई नहीं है। लेकिन अब घर में रोमन अक्षरों के स्वीकार करने की बात उठने पर बहुतेरे इसे बरदाश्त नहीं कर पाते हैं, मामले की गहराई में जाकर समझने की कोशिश भी नहीं करते हैं। कांग्रेस द्वारा-स्वीकृत नेहरू कमेटी की रिपोर्ट का यह मन्तव्य एक प्रकार से सर्वजन-स्वीकृत हो गया है कि भारतवर्ष की राष्ट्र-भाषा हिन्दुस्तानी होगी, और हिन्दुस्थानी देवनागरी अथवा अरबी (उर्दू) लिपि में लिखी जायगी। पिछले कलकत्ता कांग्रेस (१९२८) के सर्वदल-सम्मेलन में पश्चिम के एक मुसलमान सदस्य ने एक संशोधक प्रस्ताव रखा कि यह राष्ट्र-भाषा हिन्दुस्थानी, देवनागरी और अरबी दोनों लिपियों में लिखी जायगी। अर्थात् लोग अरबी लिपि भले ही न पढ़ सकें, जहाँ राष्ट्रीय राजनीतिक दल अथवा राष्ट्रीय शासन-यंत्र का कोई विज्ञापन, विधि अथवा प्रस्ताव हिन्दुस्थानी में प्रचारित होगा, वहाँ उसे अरबी लिपि में भी प्रकाशित करना होगा। सर्वदल-सम्मेलन में यह संशोधक प्रस्ताव अस्वीकृत हो गया। इसके बाद एक सिन्धी हिन्दू प्रतिनिधि ने प्रस्ताव किया कि राष्ट्र-भाषा हिन्दुस्थानी केवल रोमन अक्षरों में लिखी जायगी। बंगाली हिन्दू प्रतिनिधि के नाते मैंने भी इस प्रस्ताव का समर्थन किया। लेकिन बाकी सभी लोगों के विपक्ष में होने के कारण यह प्रस्ताव रद्द हो गया। लेकिन रोमन अक्षरों को स्वीकार करने का प्रश्न कांग्रेस में इस तरह से दब जाने पर भी कांग्रेस के बाहर दो-चार व्यक्ति इसके अनुकूल

मत पोषण करते रहे हैं। १६३४ में फरीदपुर (अब पूरबी पाकिस्तान) में बंगाल के विश्वविद्यालय और कालिज के अध्यापकों का सम्मेलन हुआ। उसमें बँगला भाषा लिखने के लिए बँगला अक्षरों की जगह रोमन अक्षरों के प्रचलन का अनुमोदन करते हुए एक प्रस्ताव आया। ३२ सदस्यों के विपक्ष में और २५ के पक्ष में मत देने के कारण प्रस्ताव रद्द हो गया। मेरा विश्वास है कि इन २५ लोगों की संख्या क्रमशः बढ़ती जायगी। बंगाल के एक लब्धप्रतिष्ठ तथा सर्वजन-समादृत लेखक—वे एक ही साथ वैज्ञानिक और आभिधानिक और व्यङ्गरचयिता हैं—ने मुझसे कहा था कि अगर उनके हाथों में कमाल पाशा जैसी शक्ति होती तो कानून बनाकर वह बँगला भाषा में रोमन अक्षरों का प्रचलन कराते। इसके विपरीत ऐसे विरोधी लोग भी है, जिनके हाथों में क्षमता होती तो वे रोमन लिपि के समर्थकों को जेल भेज देते।

भारत में रोमन-अक्षर-प्रचलन का मामला इस समय एक राष्ट्रीय समस्या या कर्तव्य के स्तर पर नहीं पहुँचा है। लेकिन जैसी हवा बह रही है, उससे लगता है कि जल्दी ही यह हमारे देश की राजनैतिक और सांस्कृतिक प्रचेष्टाओं में प्रधान स्थान लेगा। बँगला अक्षरों के बदले हमारी मातृभाषा में रोमन अक्षरों का प्रचलन करने से हमें कौन-कौन से लाभ और नुकसान होंगे, और ऐसा करना संभव है या नहीं, और करना उचित होगा या नहीं, इसे हमें विचार देखना चाहिए।

आइए हम अपनी भारतीय लिपि और रोमन लिपि के

प्राचीन भारत की
ब्राह्मी लिपि
कुषाण लिपि
गुप्त लिपि
दक्षिण भारत की लिपि
(वट्टे झु. त्तु)
पल्लव
ग्रंथ
मलयालम
तमिल
तेलुगु
कानड़ी ब्रह्म, कम्बोज और श्याम के अक्षर
मध्य-एशिया
प्राचीन कुची तथा खोतानी भाषा के अक्षर
उत्तर-पश्चिम भारत (शारदा)
(पूर्व प्रभाव)
तिब्बती
काश्मीरी, गुरुमुखी
मध्य-देश और राजस्थान-गूर्जर (नागर)
देवनागरी, गुजराती, कैथी
पूर्व-भारत (कुटिल)
बँगला, आसामी, मैथिली, नेपाली, उड़िया
यवद्वीप और बलिद्वीप आदि के अक्षर
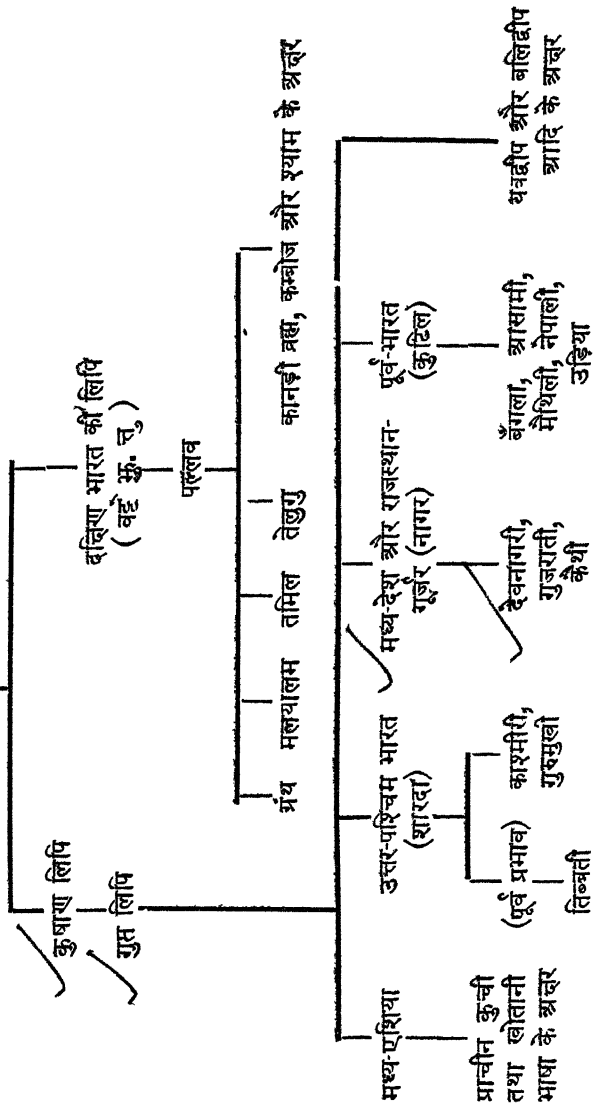
इतिहास तथा इनकी अन्तर्निहित प्रणाली या पद्धति पर ज़रा विचार कर देखें । आधुनिक भारतवर्ष की और भारत के बाहर की लिपियों का इतिहास-मूलक सम्बन्ध, एक प्रकार से पिछले पृष्ठ पर दी गई वंश-पीठिका जैसा है ।

भारत की जो लिपियाँ अभी तक पढ़ी जा सकी हैं उनमें ब्राह्मी लिपि सबसे प्राचीन है । यही भारतीय आर्य-भाषाओं से संबंधित प्राचीनतम लिपि है । हमारी हिन्दू सभ्यता का इतिहास बहुत प्राचीन है । पुराण ईसा पूर्व बहुत हजार वर्षों की बात बतलाते हैं ; लेकिन भारतवर्ष में ई० पू० ३०० के पूर्व की आर्य भाषा में रचित कोई लेख अभी तक नहीं मिला है और न पढ़ा ही गया है । मौर्य युग की ब्राह्मी लिपि को ही वर्त्तमान क्षेत्र में आधुनिक भारतीय लिपियों में आदि लिपि कहना पड़ता है । ब्राह्मीलिपि की उत्पत्ति के बारे में मतभेद है । अब तक करीब सभी समझते थे कि यह फिनिशीय अक्षरों (जो ई० पू० १००० के पहले ही सिरिया देश के Phoenicia फिनिशीया प्रदेश में प्रचलित शेमीय परिवार की फिनिशीय भाषा के आधार पर बने), से उत्पन्न हुई ; या तो दक्षिण-अरब के रास्ते, नहीं तो ईरान की खाड़ी के रास्ते, द्राविड़ जाति के वणिकों की मार्फत ये अक्षर ई० पू० ८००-६०० के लगभग भारत में लाये गये, और बाद में ब्राह्मणों के द्वारा परिवर्त्तित और परिवर्धित होकर इस अक्षरमाला (ब्राह्मी) की सम्पूर्णता साधित हुई । कोई-कोई फिनिशीय अक्षरों से ब्राह्मी अक्षरों की उत्पत्ति स्वीकार नहीं करते थे, वे अनुमान करते थे कि भारतवर्ष की आर्य-भाषी जनता द्वारा

सम्पूर्ण स्वतंत्र रूप से, किसी प्रकार की मौलिक चित्र-लिपि से, ब्राह्मी की उत्पत्ति हुई है। सम्प्रति मोहेन-जो-दड़ो और हड़प्पा में मिली सैकड़ों मुद्रालिपियों से एक नया मत प्रतिपादित हो रहा है कि प्राग्-आर्य युग की चित्र-लिपि का विकास ही ब्राह्मीलिपि है। जो कुछ भी हो, यह बात ठीक है कि ई० पू० १००० के लगभग, अशोक आदि मौर्य सम्राटों के काल में व्यवहृत, हमारी प्राप्त ब्राह्मी लिपि की प्रतिष्ठा का काल माना जा सकता है। ब्राह्मीलिपि के अक्षर सरल थे, इनमें मात्रा या किसी दूसरे प्रकार का अनावश्यक बाहुल्य नहीं था; अक्षरों की बनावट ग्रीक या लैटिन 'कैपिटल' या बड़े-हाथ के अक्षरों जैसी थी। यथा—
+ = क, Λ = ग, (= ट, o = ठ, ʌ = त, D = ध, ⊥ = न, I = र इत्यादि। स्वर वर्ण के लिए, आ-कार, इ-कार, ई-कार, उ-कार आदि विशेष चिह्न व्यंजन के शरीर, सिर और पैर पर लगाये जाते थे। यह पद्धति भारतीय अक्षरों में आज भी विद्यमान है।

ब्राह्मी वर्णों की सरलता में एक भास्कर्य सुलभ गुण विद्यमान था। इन आडम्बरहीन अक्षरों को छैनी से धीरे-धीरे पत्थर पर न खोद कर, जल्दी-जल्दी भोजपत्र या ताड़पत्र पर लिखने के कारण, उनका रूप बदलने लगा, अक्षर धीरे-धीरे कुण्डलाकृति और जटिल होने लगे। हाथ की लिखावट से अक्षरों की जो दशा अवश्यम्भावी है, वही हुई। धीरे-धीरे यह अक्षर-माला भारत के भिन्न-भिन्न प्रदेशों में नाना प्रादेशिक अक्षरों में परिणत हुई। ब्राह्मी से तुलना करने पर देखा जाता है कि ये प्रादेशिक अक्षर क्रमशः जटिल हो गये हैं।

का रूप कुछ बदल गया था। लेकिन मूल रोमन लिपि की सरलता को लोग आज भी नहीं भूल पाये हैं। आज भी जर्मनी में सजावटी मोटे अक्षर कुछ-कुछ चलते हैं; पर जर्मनी वाले इन सजावटी अक्षरों को बहुशः छोड़ कर रोमन अक्षरों को ही ग्रहण कर रहे हैं, संक्षेप में यही रोमन लिपि का इतिहास है।

भारतवर्ष में पोर्तुगीजों के आगमन के समय से इस देश में रोमन अक्षर आये। रोमन अक्षर यूरोपीय भाषाओं के वाहन होने के कारण सारे संसार में उनकी प्रतिष्ठा है। साथ ही, यूरोपीय ईसाई मिशनरियों की चेष्टा से, और सारे संसार में यूरोपियों के फैल जाने से, कितनी ही निरक्षर भाषाएँ पहले रोमन अक्षरों में ही लिखी गई हैं। भारतीयों द्वारा भी कुछ-कुछ ऐसा ही हुआ था। प्राचीन काल में हिन्दू (ब्राह्मण धर्मावलम्बी और बौद्ध) प्रचारकों और वणिकों के प्रभाव के फलस्वरूप जिस प्रकार मध्य एशिया, तिब्बत, बर्मा, श्याम, कम्बोज, मलय, सुमित्रा, यवद्वीप, बलिद्वीप, सेलेबेस, फिलिपीन आदि देशों में स्थानीय भाषाओं के लिखने के लिए भारतीय वर्णमाला का प्रसार हुआ था। आजकल कितनी ही जातियों ने स्वेच्छा से अपने प्राचीन अक्षरों को छोड़कर रोमन लिपि को अपनाया है या अपनाने की चेष्टा कर रहे हैं; तुर्कों ने कर लिया है—ईरान, जापान, और कुछ दूर तक चीन में भी यह चेष्टा चल रही है।

रोमन और भारतीय लिपि की अन्तर्निहित लेखन-प्रणाली में किंचित् पार्थक्य है। उसे पहले विचार देखना चाहिए। इन दोनों में निम्नलिखित पार्थक्य लक्षणीय हैं:—

[१] भारतीय लिपि में स्वरवर्ण को व्यंजन वर्ण के बराबर मर्यादा नहीं दी जाती है, 'क' = 'क + अ'—इस अक्षर में व्यंजन 'क्' मुख्य रूप से, और स्वर ध्वनि 'अ' गौण रूप से लिखित है, अ-कार व्यंजन के शरीर में अन्तर्निहित है। 'का, कि, कु, के' इत्यादि स्वर-युक्त 'क्' ध्वनि के लिखने में स्वरध्वनि-द्योतक अक्षर व्यंजन के आश्रित हैं, ये उसके अगल-बगल, पैर में, सिर पर किसी तरह स्थान बनाये हुए हैं। भारतीय लिपि में स्वर ध्वनि के वर्ण दो-दो रूपों में विद्यमान हैं—एक रूप जब स्वर ध्वनि शब्द के आदि में (कभी-कभी बीच में) रहती है, तब लिखा जाता है (अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ए, ऐ, ओ, औ); दूसरा रूप जब स्वर व्यंजन के बाद आते हैं तब लिखा जाता है (ा, ि, ी, ु, ू, ृ, े, ै, ो, ौ)। इसका फल यह हुआ है कि भारतीय लिपि के आधार स्वर और व्यंजन ध्वनियों से मिल कर बने 'अक्षर', पृथक् स्वतंत्र-स्थित स्वर और व्यंजन ध्वनि-वाचक 'वर्ण' नहीं। जैसे 'चतुर्थ' इस शब्द में तीन अक्षर हैं—'च-तु-र्थ'; प्रत्येक अक्षर का फिर व्यंजन और स्वर में विश्लेषण किया जा सकता है। लेकिन रोमन अक्षरों में प्रत्येक अक्षर एक-एक स्वतंत्राव-स्थित स्वर या व्यंजन-ध्वनि का प्रतीक है—यथा—Caturtha—c a t u r t h a = c (च्)—a (अ)—t (त्)—u (उ)—r (र्)—th (थ् = त् + ह् , महाप्राण त्)—a (अ)।

[२] भारतीय लिपि में व्यंजन के बाद ही व्यंजन-ध्वनि आ जाने पर, दो या ततोऽधिक व्यंजन वर्णों को तोड़ फोड़ कर

'संयुक्त वर्ण' बनाया जाता है। अनेक बार संयुक्त वर्ण बिलकुल नये अक्षर बन जाते हैं। यथा—'क्+त'='क्त'; 'क्'+'ष'='क्ष'; 'र+म'='र्म'; 'क+र'='क्र'; इत्यादि। इससे शिक्षणीय अक्षरों की संख्या बहुत बढ़ गई है—नये-नये बहुत से अक्षर विद्यार्थियों को सीखने पड़ते हैं। मातृभाषा में पढ़ना सीखने के लिए साधारणतः बँगला या हिन्दी भाषी लड़कों को दो वर्ष लगाने पड़ते हैं। रोमन अक्षरों में यह झंझट नहीं; k+t=kt, h+m=hm, r+m=rm, k+r=kr ; हिन्दी में 'अ+त्+य्+उ+क्+त्+इ=अत्युक्ति', किन्तु रोमन में a+t+y+u+k+t+i=a t y u k t i—में कोई झंझट नहीं है।

स्वर वर्णों की गौणता, तथा संयुक्त व्यञ्जन वर्णों का होना, इन दोनों कारणों से भारतीय अक्षरों की सहायता से भाषा के शब्दों का विश्लेषण दिखाना जरा कष्टकर हो जाता है। शब्दों का विश्लेषण दो प्रकार से होता है—[१] ध्वनि का विश्लेषण, [२] रूप या धातु प्रत्यय का विश्लेषण।

स्वरवर्णों को अलग लिखने के कारण रोमन लिपि में जरा जगह ज्यादा लगती है (आगे देखिए—पृष्ठ १६६ पर देवनागरी लिपि में छपी १७ पंक्तियों की जगह पृष्ठ १८९ पर रोमन में २२ पंक्तियाँ)। लेकिन लिखे हुए को पढ़ना आसान होता है, इसमें सन्देह नहीं; और 'क्ष, क्त, द्म' आदि चीना अक्षरों जैसे जटिल अक्षरों से हमें छुटकारा मिल जाता है।

रोमन लिपि में एक गुण और है—इसके वर्णों की बनावट बड़ी सरल है; देवनागरी और बँगला के किसी भी अक्षर से

तुलना करने पर यह बात समझ में आ जायगी। जैसे तुलना किया जा सकता है—इ, ई=i; क, क=k; ह, ह=h; ल, ल=l; इत्यादि।

लेकिन एक विषय में भारतीय लिपि रोमन लिपि से बहुत ऊँची है—वह है विज्ञान-सम्मत प्रणाली से भारतीय वर्णमाला के अक्षरों का समावेश या क्रम। इसमें स्वरवर्ण पहले दिये गये हैं; तदनन्तर व्यंजनवर्ण-समूह—मुँह के अन्दर या कण्ठ से लेकर उच्चारण-स्थानों के अनुसार तालु, मूर्धा, दन्त, क्रमशः मुँह से बाहर ओष्ठ तक आ कर, कण्ठ्य, तालव्य, मूर्धन्य, दन्त्य ओष्ठ्य—ये पाँच स्पर्श वर्णों के वर्ग; फिर प्रतिवर्ग में अघोष (यथा—क, ख) और घोषवत् (यथा—ग, घ) तथा नासिक्य (यथा—ङ)—और अघोष अल्पप्राण (क), अघोष महाप्राण (ख), घोषवत् अल्पप्राण (ग), घोषवत् महाप्राण (घ), इस तरह से वर्ग के प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ और पंचम वर्ण सजाये हुए हैं। स्पर्श वर्ण के बाद अन्तःस्थ वर्ण (य, र, ल, व—अंगरेजी में जिन्हें liquids and semivowels कहते हैं), तदनन्तर ऊष्मवर्ण (श, ष, स, ह—इन्हें अँगरेजी में spirants कहते हैं)। इस प्रकार का विज्ञान-सम्मत वर्ण-क्रम संसार की और किसी भी वर्णमाला में नहीं है। यह वर्ण-क्रम प्राचीन भारत से प्राप्त एक अति मूल्यवान रिक्थ है, इसे हम किसी भी दशा में नहीं छोड़ सकते। इस शुद्ध वर्ण-क्रम के सामने रोमन लिपि का वर्णक्रम टिक ही नहीं सकता। रोमन लिपि के वर्ण समूह, a b c d e f g h i—का क्रम जैसे तैसे मनमाने ढंग से सजाया गया है।

अगर हम रोमन वर्णों को स्वीकार करते हैं तो उन्हें नये सिरे से अपनी भारतीय वर्णमाला के क्रम के अनुसार सजा लेंगे।

प्रचलित रोमन वर्णमाला में भारतीय वर्णमाला की सारी ध्वनियों का आना सम्भव नहीं है—उसकी वर्ण-संख्या बहुत कम है। इस मामले में, प्रचलित रोमन वर्णमाला में कुछ विशेष निर्देशक-चिह्न लगाकर इसे भारतीय वर्णमाला के प्रत्यक्षीकरण के उपयोगी बना लेना होगा। इसमें किसी प्रकार की असुविधा नहीं होगी।

प्रश्न होता है कि हम अपनी भारतीय वर्णमाला को छोड़ कर रोमन वर्णमाला को क्यों लेने जायँ? इससे क्या लाभ है? लाभ होने पर भी क्या ऐसा करना राष्ट्रीयता का विरोधी नहीं होगा? हम हिन्दुओं ने धर्म से अपनी भारतीय वर्णमाला का सम्बन्ध जोड़ लिया है। तांत्रिक बीजमन्त्र—'ओम्, ह्रीं, क्लीं, ऐं, हूँ' इत्यादि भारतीय वर्णमाला में लिखे जाते हैं। इन्हें भी रोमन में लिखें, इस तरह का स्वप्नातीत प्रस्ताव कोई कैसे कर सकता है? देशी अक्षरों से हमें तो कोई खास असुविधा नहीं हो रही है; अज्ञात विदेशी वस्तु के मोह में आकर अपनी परिचित वस्तु को क्यों छोड़ दें?

मुझे लगता है कि रोमन अक्षरों को स्वीकार करने से हमें बहुत सी सुविधाएँ होंगी और इस विषय पर गहराई से विचार कर देखने पर तथा जिस प्रकार से रोमन अक्षरों को उपयोगी बना लेने के लिए मैं प्रस्ताव कर रहा हूँ उस तरह से रोमन अक्षरों को स्वीकार करने से हमारे लिए राष्ट्रीयता विरोधी कुछ

भी नहीं रह जायगा। इसके पक्ष और विपक्ष के तर्कों पर एक-एक करके विचार कर देखा जाय।

पहली बात है, रोमन अक्षरों को ग्रहण करने से मातृभाषा तथा विदेशी भाषाओं के सीखने का रास्ता बहुत सुगम हो जायगा। किताबें छापना भी अप्रत्याशित रूप से सहज, सरल और सुलभ हो जायगा। इस समय बँगला छापने के लिए ६०० भिन्न-भिन्न प्रकार के टाइपों की जरूरत पड़ती है। देवनागरी 'कलकतिया' हरफों मे छापने के लिए ७०० भिन्न-भिन्न प्रकार के टाइप चाहिए, 'बम्बइया' हरफों के लिए ४५० टाइप चाहिए। रोमन में अंगरेजी तथा दूसरी यूरोपीय भाषाएँ छापने के लिए कुल मिलाकर खड़े और तिरछे दो-दो करके Capital तथा Small letter आदि में प्रायः १५० टाइपों की आवश्यकता होती है। मै जिस तरह से भारतीय भाषाओं के लिए रोमन अक्षरों के व्यवहार करने की बात करता हूँ (मेरी पद्धति आगे दी गई है), उसमें चालीस से कम अक्षरों से ही काम चल जायगा। कहाँ चालीस से भी कम अक्षर, और कहाँ ६०० अक्षर! इससे छपाई के खर्च और समय में कितनी बचत होगी, इसका अनुमान लगाया जा सकता है। इसके अतिरिक्त, चालीस अक्षरों को पहचान लेने पर मातृभाषा को पढ़ा जा सकेगा—यह भी कोई कम बात नहीं है। दो वर्षों में 'वर्णमाला, पहली पुस्तक', तथा 'वर्णमाला, दूसरी पुस्तक' समाप्त करके तब कहीं बंगाली-हिन्दुस्थानी बच्चे मातृभाषा में लिखी या छपी पुस्तकें पूरी तरह पढ़ पाते हैं। मेरे द्वारा प्रस्तावित रोमन हरफों की सहायता से साधारण बुद्धिमान लड़के ३-४ महीनों में

ही सब कुछ पढ़ सकेंगे।

'क', 'ख', 'च'—इस आकार के अक्षरों का कोई विशेष महत्त्व नहीं है, इनके साथ केवल हमारे ८-९ सौ वर्षों के इतिहास का सम्बन्ध है, बस यही। अगर प्राचीनता का हिसाब लगाना है तो देवनागरी या बँगला 'क, ख, च' आदि का बहिष्कार करके ब्राह्मी को ही स्वीकार करना चाहिए। यदि हम 'क' के एक संक्षिप्त, सहज ही लिखने योग्य आकार का व्यवहार करते हैं तो इसमें कौन सा नुकसान है। और यदि यह आकार रोमन K का आकार ही हो तो, उसी में कौन सी क्षति है? 'क' न लिखकर K लिखेंगे; K हमारा 'क' होगा—K को हम 'क' कहेंगे—अँगरेज़ों ने जिस प्रकार इस अक्षर का नाम रखा है Kay 'के', उस तरह 'के' हम नहीं कहेंगे। 'ग' के नये रूप के तौर पर g को लेंगे; 'g'—इस चिह्न का नाम रखेंगे 'ग'—अँगरेज़ों की तरह Jee 'जी' नहीं कहेंगे, फ्रांसीसियों की तरह g को zhi नहीं कहेंगे, स्पेनीय लोगों की तरह g को Khe 'खे' नहीं कहेंगे। 'ह' के नये रूप के तौर पर अगर h को लेकर, 'h' चिह्न को ही 'ह' कहें—अँगरेज़ों की तरह aitch 'एच' नहीं, फ्रांसीसियों की तरह ache 'आश्' नहीं, स्पेनीय लोगों की तरह ache 'आचे' नहीं, तो क्या आता जाता है? सरलता होने के कारण रोमन वर्णों को देशी नाम से अपनी भारतीय वर्णमाला के नये रूप या प्रत्यक्षर के तौर पर स्वीकार करेंगे और अक्षरों को अपनी भारतीय वर्णमाला के 'अ, आ, क, ख' आदि क्रम से सजायँगे। इससे भारतीय पद्धति—इसका वर्णक्रम—बनी रहेगी, भारतीय नाम बना रहेगा

और लिखना भी सहज होगा। ऐसा करने से राष्ट्रीयता-बोध के क्षुण्ण होने का कोई डर नहीं रहेगा।

साधारणतः 'भारतीय रोमन' या 'भारत-रोमक' वर्णमाला का व्यवहार होने पर भी, प्राचीन भारतीय लिपि का सम्पूर्ण रूप से वर्जन नहीं होगा। तांत्रिक मंत्रादि लिखने के लिए, अलंकरण के लिए, नाना प्रकार से भारतीय लिपियों (देवनागरी, बँगला, तेलुगु, ग्रंथ आदि) के व्यवहार में कोई बाधा नहीं आएगी। विशेष कामों के लिए कुछ पंडितों के, देश की प्राचीन वर्णमाला होने के कारण, एक या एकाधिक भारतीय वर्णमालाओं को सीख रखने से भविष्य में सारे राष्ट्र का काम भली भाँति चल जायगा।

वर्त्तमान क्षेत्र में हमें असुविधा नहीं हो रही है, अतएव उन्नति करने की आवश्यकता नहीं—ऐसा मनोभाव सभी नहीं अपना सकते। हमारी अपनी चीज़ अच्छी है, इसे और भी अच्छा बनाया जा सकता है कि नहीं, कर देखने में कौन सा नुकसान है? ६०० की जगह ४०, दो सालों की जगह चार महीने—राष्ट्र के अर्थनीतिक और समय-सम्बन्धी तथा मानसिक लाभ-नुकसान के खाते इन दोनों प्रकार के अंकों पर क्या विचार नहीं कर देखना चाहिए? ठंडे दिल से विचार करने पर समझ में आ जायगा कि राष्ट्र-लिपि के प्रति एकमात्र Sentiment अर्थात् भावुकता के सिवा रोमन अक्षरों के विरुद्ध कोई भी तर्क नहीं है। हाँ, Sentiment एक बड़ी चीज़ है, और वह उपेक्षणीय नहीं है। पर Sentiment केवल अंध-भक्ति से उद्भूत न होकर, ज्ञान और भक्ति-मिश्रित होने से हमारा सर्वतोमुखी कल्याण होगा।

समस्त सभ्य संसार में जो राष्ट्र सबसे अग्रगामी हैं, उनमें रोमन अक्षरों का प्रचलन है, और भी कितने ही राष्ट्रों ने रोमन को अपनाया है, अपना रहे हैं, और अपनायेंगे। रोमन के मार्फत समस्त संसार से हमारा सम्बन्ध स्थापित हो तो इसमें कौन सा नुकसान है? रोमन वर्णमाला अब केवल रोम, इतालिया या यूरोप में ही सीमित नहीं है, अब यह सार्वभौम वर्णमाला हो गई है। जिस तरह अंगरेजी भाषा अब केवल अंगरेजों की ही नहीं है, पर समस्त संसार के आधुनिक युग की सभ्यता का वाहन सार्वजनीन भाषा बन गई है। यूरोपीय घड़ी की भाँति इसकी सुविधा को सभी स्वीकार करेंगे—घड़ी ने आकर हमारे 'दण्ड', 'पल' इत्यादि की दुकान उठा दी है—क्या इससे हमारी राष्ट्रीयता को कोई हानि पहुँची है?

रोमन अक्षर आज या कल ही हमारी भाषा और साहित्य के इतिहास को मिटा दे, भारतीय वर्णमाला को विताडित करके एक ही दिन में भारत में राज करने लगे, इस तरह का पागलों का प्रलाप कोई नहीं करेगा। रोमन की बात उठी है; देश की संस्कृति की जो उपेक्षा नहीं करते हैं, ऐसे विचारशील व्यक्तियों में कोई-कोई इसका समर्थन कर रहे हैं; इस पर जरा विचार कर देखने में क्या हर्ज है?

बहुत छोटे शिशुओं को सीधे रोमन अक्षर सिखाना फिजूल होगा। शिशुओं की परीक्षा हो गई है। देखा गया है कि वे रोमन हरफों की सहायता से मातृभाषा जल्दी-जल्दी पढ़ना सीख जाते हैं। लेकिन रोमन हरफों में छपी पुस्तकें दो-चार से अधिक नहीं

हैं। इनकी सहायता से इस प्रकार सीखने से उन्हें कोई फायदा नहीं होता, बाद में भारतीय अक्षर उन्हें सीखने ही पड़ते है। पहिले वयोज्येष्ठों को समझाने की जरूरत है। ३०-४०-५० वर्षों तक दोनों वर्णमालाएँ साथ-साथ चलेंगी—भारतीय अक्षरों में लिखी भारतीय भाषा, और रोमन अक्षरों में लिखी भारतीय भाषा। अंगरेजी के रहने के कारण हमें यों भी तो रोमन अक्षर सीखने पड़ते हैं। शिक्षित लोगों का रोमन अक्षरों से परिचय बढ़ रहा है, अंगरेजों के देश छोड़ कर चले जाने पर भी अंगरेजी भाषा (और साथ ही फ्रांसीसी, जर्मन आदि भाषाओं) को हम नहीं छोड़ सकते। कुछ प्रचार की आवश्यकता है। शिक्षित जनता में, कालिज और स्कूलों के विद्यार्थियों में, साधारण अक्षर-ज्ञान वाले लोगों में, आलोचना की आवश्यकता है। रोमन अक्षरों मे बँगला, रोमन अक्षरों में हिन्दी, रोमन अक्षरों में तेलुगु आदि, दो-दो एक-एक स्तंभ करके उन भाषाओं के अखबारों में कभी-कभी छापे जा सकते हैं। रोमन अक्षरों में मातृभाषा लिखना पहले स्कूल-कालिजों की ऊँची कक्षाओं में सिखाया जा सकता है। लोग जब इसकी उपयोगिता समझ जायँगे तब स्वेच्छा से भारत की संस्कृति, भारत की भाषाओं के उपयोगी बनाकर इसे स्वीकार करेंगे। तब राष्ट्रीय-आत्म-सम्मान के ह्रास की कोई बात नहीं रहेगी। बाहर या ऊपर के दबाव से इसका प्रचार या स्वीकृति नहीं होगी। इसकी उपयोगिता को समझ कर अपने Sentiment या भावुकता से मेल कराकर तब हम खुद ही इसे स्वीकार कर सकते हैं।

भारत में रोमन अक्षरों को चलाने की चेष्टा एकाधिक बार हुई थी, लेकिन किसी भी बार वह चेष्टा फलवती नहीं हुई। कारण यह है कि वह चेष्टा बाहर से हुई थी। आंशिक रूप से एक-दो स्थानों में रोमन अक्षरों का प्रचलन हुआ है। लेकिन अब तक देश की हालत इसके लिए अनुकूल नहीं थी। पोर्तुगीज़ रोमन-कैथलिक पादरियों की चेष्टा से गोवा की भाषा कोंकणी रोमन लिपि में लिखी जाती है, गोवा के ईसाई इन अक्षरों को आज भी व्यवहार करते हैं। बँगला भाषा में रोमन अक्षरों का व्यवहार पादरियों ने ईसा की १७ वीं शताब्दी के प्रथमार्ध से शुरू किया। लेकिन वह मुट्ठीभर ईसाइयों में ही सीमित था, और बाद में वह अप्रचलित हो गया। उन्नीसवीं सदी के प्रथमार्ध से ही यूरोपीय प्राच्यविद्यालोचकों ने संस्कृत, पालि आदि प्राचीन भाषाओं को रोमन लिपि में लिखना शुरू किया, और आगे चलकर भारत की आधुनिक भाषाएँ भी इसमें लिखी जाने लगीं। बीच-बीच में दो-एक उत्साही अंगरेजों ने व्यापक रूप से भारतीय भाषाओं को लिखने के लिए रोमन अक्षरों के व्यवहार की चेष्टा की, लेकिन देश के लोगों के समर्थन या उत्साह के अभाव के कारण यह सफल नहीं हुई।

भारतीय भाषाओं में रोमन वर्णमाला का प्रयोग करने के लिए कुछ मुख्य बातें हमे जान लेनी चाहिए। जो थोड़े से रोमन अक्षर सर्वत्र मिलते हैं, केवल उन्हीं से काम चल जाय, इसकी चेष्टा करनी चाहिए। बिलकुल नये अक्षरों के होने से, या प्रचलित अक्षरों मे मात्रा या बिन्दु आदि चिह्न लगाकर नये

अक्षर बनाने से रोमन अक्षरों का चलाना कठिन होगा। कारण यह है कि ऐसे अक्षर साधारणतः दुर्लभ हैं। प्राथमिक परीक्षा या समीक्षा के युग में बहुत कम छापाखाने नये अक्षरों की matrix या कलम छेनी से काटकर बनाने या नये अक्षरों को खरीद कर रखने के लिए तैयार होंगे।

इस समीक्षा के लिए, रोमन वर्णमाला भारतीय भाषाओं में चल सकती या नहीं इसे देखने के लिए, बँगला या देवनागरी अक्षरों में अगल-बगल या साथ-साथ व्यवहार के उद्देश्य को लेकर बँगला, हिन्दी और संस्कृत के लिए उपयोगी रोमन वर्ण-माला नीचे दी गई है।

इस 'भारत-रोमक' वर्णमाला में a b c d e f g h i j k l m n o p q r s t u v w x y z æ ये २७ रोमन अक्षर काम में लाये जायँगे। बँगला, हिन्दी, संस्कृत के लिए इनमें सभी की आवश्यकता नहीं होगी। कुछ का व्यवहार उर्दू के लिए सीमित रहेगा। इसके अतिरिक्त—नितान्त आवश्यक होने पर, प्रचलित अक्षरों को—जैसे c e f h j k v इन अक्षरों को—उलट कर नये अक्षर के तौर पर अर्थात् ɔ ə ɟ ɥ ¡ ʞ ʌ के तौर पर व्यवहार किया जायगा। लेकिन प्रचलित रोमन अक्षरों के बाहर न जाना ही अच्छा होगा। प्रचलित २७ अक्षरों, तथा इन नये अक्षरों के द्वारा, और नीचे दिये गये indicator या सूचक-चिह्नों की सहा-यता से भारतीय भाषाओं की प्रायः सभी ध्वनियों या वर्णों को घोषित किया जा सकेगा। सूचक-चिह्न ये हैं—

˙ = उलटा फूल-स्टाप, हिन्दी नाम 'बिन्दी'—भिन्न-भिन्न

परिवर्त्तनों को सूचित करने के लिए व्यवहृत; ′ = मिनिट-चिह्न या 'डंडा'—स्वरवर्ण की दीर्घता का सूचक और तालव्य-वर्ण-द्योतक चिह्न; ' = चोटी, —मूर्धन्य वर्ण का चिह्न। ये सूचक-चिह्न जिन अक्षरों के विशेष उच्चारण को सूचित करेंगे उसी अक्षर के बाद बैठाये जायेंगे।

एक बड़ी बात। भारत-रोमक लिपि में रोमन वर्णमाला के Capital letters या बड़े हाथ के वर्ण काम में नहीं लाये जायेंगे। इससे अनावश्यक २७ अक्षर छूट जायँगे। Proper Noun अर्थात् स्थान और पात्र-वाचक नामों के लिए नाम के पहले एक * तारक चिह्न देने से काम चल जायगा। और 'ख, घ, छ, झ, ठ, ढ, थ, ध, फ, भ, ढ़'—इन ११ महाप्राण वर्णों का विश्लेषण करके अल्पप्राण वर्ण k g c j t' d' t, d, p b r'—मे 'प्राण' या ह-कार (h) जोड़ देने से काम चल जायगा। इस प्रकार से ११ अक्षरों का बोझ भारत-रोमक वर्णमाला के कंधों से उतारा जायगा।

प्रस्तावित भारत-रोमक वर्णमाला इस प्रकार की होगी (अक्षर के बगल में कोष्टक के अन्दर अक्षरों का जो नामकरण होगा उसे हिन्दी अक्षरों में लिख दिया गया है—याद रखना चाहिए कि इनके अंगरेजी नामों का सदा बहिष्कार करना होगा)—

भारतीय-रोमक वर्णमाला

(बँगला हिन्दी और संस्कृत के लिए)

स्वर वर्ण

a (अ), a′ (आ); i (ह्रस्व इ), i′ (दीर्घ ई); u (ह्रस्व उ),

u´ (दीर्घ ऊ); r· (सिर पर बिन्दी ऋ), r´ (दीर्घ ॠ); l· (ऌ), l´ (दीर्घ ॡ); e (ए), ai (ऐ); o (ओ), au (औ); am· (अनुस्वार), ah· (विसर्ग); n, (=चन्द्र बिन्दु की तरह अनुनासिक 'न'—'पैर में डंडा,' चन्द्रबिन्दु)।

व्यंजन वर्ण

k (क), kh (क में ह्, या क में प्राण ख), g (ग), gh (ग में ह्, या ग में प्राण घ), n· ('माथे पर बिन्दी' ङ)।

c (च), ch (च में ह्, या च में प्राण छ), j (वर्गीय ज), jh (ज में ह्, या ज में प्राण झ), n´ ('माथे पर डंडा' ञ)।

t' ('सिर पर चोटी' ट), t'h (ट में ह् या ट में प्राण ठ), d' ('सिर पर चोटी' ड), d'h (ड में ह् या ड में प्राण ढ), n' ('सिर पर चोटी' मूर्धन्य ण)।

t (त), th (त में ह् या त में प्राण थ), d (द), dh (द् में ह् या द् में प्राण ध), n (दन्त्य न)।

p (प), ph (प में ह् या प में प्राण फ), b (ब), bh (ब में ह् या ब में प्राण भ), m (म)।

y (य), r (र), l (ल), w (व)।

s´ (सिर पर डंडा तालव्य श), s' ('माथे पर चोटी' मूर्धन्य ष), s (दन्त्य स), h (ह)।

r' (ड़), r'h (ड़ में ह या ड़ में प्राण ढ़); ks' (क्+ ष=क्ष), jn´ (ज्+ञ=ज्ञ)

अक्षरों के सम्बन्ध में मन्तव्य

a=अ।

उत्तर-भारत की भाषा में शब्द के अन्त में अनुच्चारित अ-कार भारत-रोमक में नहीं लिखा जायगा; जैसे ra′m = राम, ha′t = हात (बँगला), ha′th = हाथ (हिन्दी), इत्यादि।

r˙—बिन्दी द्वारा ऋ-कार को, r = र से अलग दिखाया गया है। उसी तरह r’ = ड़।

n, = सानुनासिकता के लिए पैर के नीचे डंडी सहित n, वर्ण भारतीय-रोमक-लिपि में प्रयुक्त हो सकता है। n, स्वर वर्ण के बाद बैठेगा—जैसे—pa′n,c = पाँच, pin,jr’a′ = पिंजड़ा।

t’, d’, n’, r’, s’ = ट, ड, ण, ड़, ष — ’ चिह्न के द्वारा मूर्धन्य ध्वनि समूह सूचित होंगे।

सिर पर दीर्घ-मात्रा-युक्त रोमन अक्षरों का मिलना कठिन है, इसलिए [′] के द्वारा स्वरवर्ण को दीर्घता सूचित की गई है। नीचे बिन्दी या दूसरा चिह्न आँखों को खटकने वाला होता है—लेकिन सिर पर या बगल में चिह्न रहने पर पढ़ते समय उतना कष्ट नहीं होता; बल्कि पृथक् विशेष चिह्नों से चिह्नित नये अक्षरों की आवश्यकता नहीं होती है। विदेशी ध्वनियों या अक्षरों के लिए ɔ ə ų ! k, f, v, q, x, z, z′ h’ का व्यवहार होगा। ɔ विकल्प में बँगला अ-कार के लिए चल सकता है। लेकिन हिन्दी और संस्कृत से सामंजस्य रखकर, अखिल भारतीय रीति से अ-कार के लिए a का व्यवहार करना ही अच्छा है। ə = अँगरेज़ी का अस्पष्ट आ-कार (यथा—ago, china आदि शब्दों का a); ų = अरबी का 'ऐन' वर्ण, विकल्प में प्रस्तावित † के बदले; f, v—अंगरेजी दन्त्यौष्ठ f, v की ध्वनि; q उर्दू,

फारसी, अरबी का 'बड़ा काफ' वर्ण; ɣ=उर्दू, फारसी, अरबी का ग़ैन या 'ग़ैन' अक्षर (अथवा gh·); x=उर्दू, फारसी, अरबी का 'ख़' वर्ण (अथवा kh·); z=अंगरेजी z, फारसी और उर्दू के ज़ाल, ज़े, ज़्वाद और ज़ोय अक्षरों के लिए; z' फारसी के झ़ अक्षर के लिए; h'=अरबी के 'बड़ी हे' अक्षर के लिए; ! (अथवा ?)=अरबी के 'अलिफ-हमज़ा' के लिए।

भारतीय नाम से कथित और भारतीय वर्ण-क्रम से सजाई 'भारत-रोमक' लिपि की वर्णमाला को सीखने के बाद, भारतीय बालक-बालिकागण जब अंगरेजी पढ़ेंगे तब वे अंगरेजी की first book पढ़ने के समय a, b, c, d के क्रम से रोमन वर्ण-माला नहीं सीखेंगे; बल्कि वे भारतीय क्रम के अनुसार ही सीखेंगे। अंगरेजी शब्द के हिज्जे वे अक्षरों के भारतीय नामों से ही करेंगे। अंगरेजी neighbour (n-e-i-g-h-b-o-u-r) शब्द के हिज्जे करने के लिए—दन्त्य-न, ए, इ, ग, ह, ब, ओ, उ, र' कहेंगे; अंगरेजी की तरह ऐन-ई-आई-जी-ऐच-बी-ओ-यू-आर नहीं कहेंगे; जैसे फ्रांस के लड़के, उसी अंगरेजी शब्द के हिज्जे अपनी भाषा के अक्षरों के नाम के अनुसार करते हैं—'एन्-आ, इ, झी-आश्-बे-ओ-यू-आर' कहते हैं; या स्पेन के लड़के 'एने-ए-इ-खे-आचे-बे-अ-उ-एरे,' अथवा स्वीडन के लड़के 'एन्-ए-ई-इये-हो-बे-यु-एर्' कहते हैं।

हिन्दी मे इस भारत-रोमक वर्णमाला का प्रयोग दिखलाने के लिए नीचे इस परिशिष्ट के प्रारम्भ की कुछ पंक्तियाँ इस वर्णमाला में मुद्रित की जा रही हैं। इस मुद्रण-कार्य में किसी भी अक्षर के

लिए साधारण मुद्रणालय के अंगरेजी टाइप-केस के बाहर नहीं जाना पड़ा है।

❀bha'rat ki' sa'ri' bha's'a'on, ko❀roman ya'❀romak aks'aron, men, likhane ka' prasta'w bahut dinon, se cala' a' raha' hai. yah prasta'w u'pari' dr's't'i se itana' ana'was'yak aur ra's't'riyata'-virodhi' hai ki hama're des' men, sabhi' is prasta'w ki' ba't sunate hi' ise ras't'riyata'bodh-warjit pa'gal ka' prala'p kah kar ur'a' dete hain,, iske sambandh men, koi' ba't sunana' hi' nahin, ca'hate hain,. lekin yah prasta'w ut'ha'ya' gaya' hai. yadyapi ab tak mut't'hi' bhar log hi' iske paks' men, hain,, aur des' ki' janata' iske ba're men, uda'si'n hai ya' iski' wirodhi' hai, phir bhi' mujhe lagata' hai s'iks'it logon, ki' dr's't'i dhi're-dhi're, bahut dhi're, idhar a'kars'i't ho rahi' hai. ❀ turki' men, ❀ a'ta'turk ❀ ga'zi' ❀ kama'l ya' ❀ kama'l pa's'a' ne ❀ roman haraf cala'ya' hai, sabhi' unaki' ta'ri'f kar rahe hain,—samagra ❀ arabi' ❀ kura'n bhi' ❀ turkon, ne ❀ roman harafon, men, cha'pa' hai. ❀ i'ra'n ya' ❀ pha'ras men, bhi' ❀ roman aks'ron, ko swi'ka'r ı n e ka' pras'na ut'ha' hai, aur ❀ pha'rasi' bha's'a' men, ❀ u'ropi'ya swaralipi ke wyawaha'r hone ke ka'ran' us swaralipi men, jo ❀ pha'rasi' ga'ne praka's'it

hote hain, , majbu'ran we ❀ roman harafon, men, hi' likhit ho rahe hain, .

छपाई में रोमन अक्षरों की एक और सुविधा के बारे में लिखकर—जिसके बारे में पहले उल्लेख नहीं किया गया है—फिलहाल निबन्ध को समाप्त करूँगा। रोमन अक्षरों के स्वल्प रेखायुक्त और सरल होने के कारण, इसके टाइप को बहुत छोटा किया जा सकता है और टाइप टूटता भी बहुत कम है। बँगला में साधारणतः Small pica स्माल पाइका में छपाई होती है। लेकिन देवनागरी में स्माल पाइका उतना नहीं चलता है, पाइका काचलन हीं अधिक है। Bourgeois बर्जाइस जैसे छोटे अक्षरों का इस्तेमाल देवनागरी अक्षरों में कम होता है। जटिल अक्षर क्षण-स्थायी होते हैं और स्याही भी ठीक से नहीं पड़ती है इसलिए आँखों के लिए यह खराब है। रोमन अक्षरों जैसे सरल या स्वल्प रेखायुक्त अक्षरों में इसका खतरा कम होता है।

परिशिष्ट [ग]

भारत की राष्ट्र-भाषा चलती हिन्दी

हिन्दी या हिन्दुस्थानी का जो व्याकरण मुझे पहले-पहल मिला और जिसे अच्छी तरह देखने का मुझे मौका मिला वह भारत में आये गोरे सिपाहियों के लिए एक अंग्रेज फौजी अफसर की लिखी छोटी सी पुस्तक थी। आज से ४८ वर्ष पहले जब मैं स्कूल का विद्यार्थी था उस समय कालिज स्ट्रीट और हरिसन रोड के मोड़ पर कृष्णदास पाल की मूर्त्ति के बगल में चार-चार पैसे में बिकनेवाली पुरानी पुस्तकों के ढेर में से इसे मैंने खरीदा था। पुस्तक को लेने और पढ़ने के पहले हिन्दी व्याकरण की बात मैंने बिलकुल ही नहीं सोची थी। कलकत्ते के बंगाली घरानों के और लड़कों की तरह मैं भी थोड़ी-बहुत बाजारिया या चलती हिन्दुस्थानी जानता था, कलकत्ते में पश्चिम के मजदूरों, गाड़ी-वानों, चौकीदारों, दुकानदारों, फेरीवालों आदि से बातचीत करने के लिए यह बाजारिया हिन्दुस्थानी ही काफी थी, हिन्दुस्थानी या हिन्दी का व्याकरण भी है, उसे भी अच्छी तरह पढ़ना पड़ता है, इन बातों को सोचने का मौका तब नहीं मिला था। लेकिन इस Hindustani Grammar For British Soldiers and others proceeding to India पुस्तक के पन्ने उलटते हुए भाषातत्त्व-सम्बन्धी एक नये संसार का पर्दा मानो मेरी आँखों के सामने से

हट गया, कुछ साधारण बातों ने नये तरीके से मेरे सामने आत्म-प्रकाश किया। यह छोटी पुस्तक काफी सरल भाषा में लिखी गई थी। हिन्दुस्थानी शब्दों के केवल रोमन अक्षरों में ही होने के कारण, मेरे लिए उस समय बड़ी सुविधा हुई—तब तक मैंने उर्दू अक्षरों को पढ़ना या लिखना नहीं सीखा था, और देवनागरी पढ़ लेने पर भी उतनी स्वच्छन्दता से देवनागरी का व्यवहार नहीं कर पाता था। इसके अतिरिक्त इस पुस्तक में शब्दों और क्रिया पदों आदि के रूपों में हाइफन या संयोग-चिह्न का काफी व्यवहार होने के कारण भाषा के पदों का धातु-प्रत्ययात्मक विश्लेषण समझने में बड़ी आसानी हुई थी। अस्तु, इस पुस्तक से हिन्दुस्थानी के 'का, के, की, को' इन विभक्तियों का रूप पहले-पहल समझा; हिन्दी के इन अनुसर्गों या कर्म-प्रवचनियों का शुद्ध प्रयोग सीखा। हम हिन्दी में 'हाम्' या 'हम' और 'तोम्' या 'तुम'—"मैं" और 'तुम' के अर्थ में इन दो सर्वनामों से परिचित थे, और 'आपनि' के अर्थ में 'आप' को जानते थे। इस पुस्तक में देखा कि "आमि" और "तुमि" या "तुइ" के लिए हिन्दी में 'मैं' और 'तू' ये दो सर्वनाम और हैं। देखते ही समझ गया कि ये दोनों हमारी बँगला के "मुइ, तुइ" के अनुरूप हैं। हम कलकत्ते में बोला करते हैं, 'हामारा' (या हमारा) बात'। लेकिन शुद्ध हिन्दी में सीखा—'मेरी बात या हमारी बात', और भी सीखा कि भविष्य में गमनार्थक 'या' या 'जा' धातु का रूप हिन्दी में इस प्रकार होता है—एकवचन में 'मैं जाऊँगा, तू जायगा, वह जायगा,' बहुवचन में 'हम जायँगे, तुम जाओगे, वे जायँगे।' व्याकरण में इस

बात को पढ़ने के दो-चार दिन पहले दो साहबों के मुँह से 'या' या 'जा' धातु के कलकत्ते में प्रचलित बाजारिया हिन्दी में जो भविष्यत् काल के रूप सुने थे वे मुझे याद थे, और शुद्ध हिन्दुस्थानी के रूप तथा कलकत्ते में सर्वजन-व्यवहृत रूप में पार्थक्य ने उस समय मुझे जरा अचंभे में डाल दिया था। स्कूल से घर आते समय मैंने देखा कि सड़क पर एक जगह मिट्टी खोद कर नल बैठाया जा रहा है—बहुत संभव है बिजली बत्ती के तार के लिए। कुछ पश्चिमी मज़दूर काम रहे थे। दो साहब उनके कामों की देख भाल कर रहे थे, एक लालमुँहा गोरा, और दूसरा काले मटमैले रंग का फिरंगी। ये आपस में हिन्दुस्थानी में ही बातें कर रहे थे। मैंने सुना कि गोरा साहब धीरे धीरे बोल रहा है—'हम जाएगा, टोम जाएगा, वो जाएगा, हम सब कोई जाएगा!' केवल इतना ही सुना, पूर्वापर कुछ भी नहीं सुन सका। लोग कहते हैं कि भारतीय दार्शनिक जाति हैं, बात ठीक है। उस समय मैं १२-१३ साल का बालक था। फिर भी साहबों के मुँह से मज़दूरों के लिए कही उपर्युक्त बातों को सुनकर मैंने सोचा कि बात तो सही है, हम सभी जायँगे,—लेकिन कहाँ जायँगे? —और यह बात भी मन में आई थी कि हम आये कहाँ से हैं? क्या इस मामले का फैसला जीवन में संभव भी है? अस्तु, इस घटना के कुछ ही दिनों के बाद जब हिन्दुस्थानी व्याकरण हाथ में आया तो, एक ओर हमारे कलकत्ते के पश्चिमी मज़दूर, गोरे साहब, काले साहब, और बंगाली सभी के द्वारा व्यवहृत एक मात्र रूप 'जाएगा' या 'जायगा' और दूसरी ओर व्याकरणानु-

मोदित हिन्दुस्थानी का 'जाऊँगा, जाएँगे, जायगा, जाओगे' आदि को देखकर मेरे मन में यह बात आई कि हम कलकत्ते में हिन्दुस्थानी को सरल बनाकर बोलते हैं—क्रियापद के पुरुष तथा वचन-भेद के कारण ४-५ भिन्न-भिन्न रूपों की जगह भिन्न-भिन्न पुरुषों और वचनों में प्रयुक्त होने लायक एक ही रूप को हमने निश्चित कर लिया है। समझ गया कि व्याकरण न पढ़ कर, परिश्रम न कर के, रास्तों घाटों में सुन-सुनकर हम—क्या बंगाली, क्या हिन्दुस्थानी, क्या अंग्रेज़—जिस हिन्दुस्थानी का व्यवहार करते हैं, पश्चिम की किताबी भाषा से अलग होने पर भी, और व्याकरण की दृष्टि से अशुद्ध या असम्पूर्ण होने पर भी वह बड़े काम की भाषा है, जीवित भाषा है। जीवन के सभी कामों को हम इस सहज चलती हिन्दुस्थानी से चला लेते हैं, इसमें व्याकरण की बारीकियाँ न होने पर भी कोई भी नुकसान नहीं होता।

बंगाल के बाहर जाकर भी हम कलकत्ते की बाजारिया हिन्दी ही की सहायता से दिग्विजय करते हैं। बंगाली सज्जन तीर्थ, भ्रमण या व्यापार के लिए पटना, गया, काशी, गोरखपुर, मिर्जापुर, प्रयाग, अयोध्या, लखनऊ, कानपुर, आगरा, मथुरा, जयपुर यहाँ तक कि लाहौर, काश्मीर, कराची, बम्बई तक घूम आते हैं; सर्वत्र—रेल, स्टेशन, रास्ते, होटल, दुकान, बाजार में—कलकत्ते की जो बाजारिया हिन्दी बोलते हैं उसी से सब फतह कर आते हैं—इस भाषा को तुच्छ समझ कर कैसे वर्जन किया जाय? इस भाषा के कल्याण से भारतवर्ष जैसे विशाल देश के उत्तरांश में प्रायः सर्वत्र और दक्षिण के बड़े-बड़े

शहरों में और प्रधान तीर्थ-स्थानों में हमें भाषा-संकट का सामना नहीं करना पड़ता। अखिल भारत की एकता-प्रदर्शक इस भाषा की उपेक्षा हम कैसे करें ?

कुछ समय हुआ, मैंने कलकत्ते की बाजारिया हिन्दुस्थानी या हिन्दी की प्रकृति और स्वरूप पर विचार करके इसका कुछ निदर्शन करते हुए एक लेख लिखा था (Calcutta Hindustani—A Study of a Jargon Dialect: Bulletin of the Linguistic Society of India पत्रिका, Lahore, 1930; कलकत्ते की बाजारी हिन्दुस्थानी, ऋतम्भरा, पृ० २७-३६; साहित्य भवन लिमिटेड, प्रयाग, १९५१)। यह बाजारिया हिन्दुस्तानी कलकत्ते की भाँति अन्य क्षेत्रों में भी विद्यमान है। वास्तव में, पूर्वी पंजाब और पश्चिमी उत्तर प्रदेश (कन्नौज से लेकर अम्बाला तक) शुद्ध हिन्दी का राज है। इस भूखंड मे कई प्रादेशिक बोलियाँ भी हैं। इस अंचल के बाहर लोग घरों में भिन्न-भिन्न प्रकार की भाषाएँ बोलते हैं, उनका व्याकरण हिन्दी-व्याकरण से अनेक विषयों में बिलकुल अलग है। लेकिन वे लिखने-पढ़ने के काम में, भाषण में, हिन्दुस्थानी (अर्थात् हिन्दी या उर्दू) का व्यवहार करते हैं। शिक्षित लोग यत्नपूर्वक हिन्दी या उर्दू पढ़ते है, लेकिन घर में या तो लहँदा या हिन्दकी अर्थात् पश्चिमी-पंजाबी, नहीं तो पूर्वी-पंजाबी, अथवा गढ़वाली, या कुमायूँनी, या राजस्थानी (मारवाड़ी, जयपुरी, मालवी आदि), कोशली या पूर्वी-हिन्दी (अवधी, बघेली, छत्तीसगढ़ी) अथवा भोजपुरी, मगही या मैथिली बोलते हैं। ये भाषाएँ जहाँ-जहाँ घरेलू भाषा के रूप में

प्रचलित हैं, वहाँ की चलती हिन्दी शुद्ध नहीं है। वहाँ स्कूलों या मकतबों या संस्कृत पाठशालाओं मे पढ़े लोगों को छोड़कर, जनता मे जो हिन्दी या हिन्दुस्थानी प्रचलित है वह इसी बाजारिया हिन्दी का ही रूप-भेद मात्र है । इस समय बिहार, पूरबी उत्तर-प्रदेश, पंजाब, राजस्थान, गुजरात, सिन्ध, महाराष्ट्र आदि में प्रचलित भिन्न-भिन्न प्रकार की बाजारिया हिन्दी और कलकत्ते या बंगाल की बाजारिया हिन्दी में सभी बातों में समानता न होने पर भी व्याकरण की सरलता, तथा नाना प्रकार की जटिलताओं के वर्जन के कारण इनमें एक प्रकार का साम्य या योगसूत्र मिलता है। इस साम्य को आधार बनाकर 'सहज' या 'सरलीकृत' और 'अखिल भारतीय' इस नाम से जिसका वर्णन किया जा सके, एक ऐसी 'लघु हिन्दी' या 'सरल हिन्दी' या 'चलती हिन्दी' के स्वरूप का निर्णय किया जा सकता है। द्राविड़-भाषी दक्षिण में, तेलुगु, तमिल, कन्नड, मलयाली लोगों के देश में, बड़े-बड़े शहरों और तीर्थस्थानों में जहाँ हिन्दुस्थानी बोलने वाले मिलते हैं, उनमें प्रचलित हिन्दुस्थानी, इसी साधारण चलती हिन्दुस्थानी का ही अनुकरण करती है—शुद्ध, किताबी हिन्दी या उर्दू का नहीं । भारतीयों से मिल जुल कर विदेशी लोग इसी चलती हिन्दी को ही सीखते हैं—क्या अंग्रेज़, क्या पठान, क्या ग्रीक, क्या जर्मन, क्या ईरानी, क्या ईराकी, क्या यहूदी, क्या चीनी, क्या भोट, क्या बर्मी ।

हिन्दुस्थानी, हिन्दी, उर्दू—इन तीनों से किस बात का बोध होता है, पहले इसे संक्षेप में बतला दूँ । उत्तर-भारत का गंगा

काँठा दो प्रधान भागों में विभक्त है—(१) 'पछाँह' या पश्चिमी भाग, एवं (२) 'पूरब' या पूरबी भाग—(अवध अर्थात् अयोध्या, भोजपुर और बिहार को लेते हुए)। 'पछाँह' खण्ड अर्थात् पश्चिमी उत्तर-प्रदेश और पूरबी पंजाब में—विशेष करके उत्तर-प्रदेश की मेरठ और रुहेलखंड कमिश्नरियों में जनता जिस भाषा को बोलती है, वह हिन्दुस्थानी है। यह मौखिक भाषा है; इसका व्याकरण 'पश्चिम-हिन्दी' श्रेणी का है। कुछ उपभाषाएँ (यथा ब्रजभाखा, कन्नौजी, बुन्देली) इसी पर्याय की हैं। व्यापक रूप से, रामपुर रियासत और मुरादाबाद, बिजनौर, मेरठ, मुजफ्फरनगर, सहारनपुर, अम्बाला और करनाल, हिसार, रोहतक—इन जिलों में घरेलू-भाषा के रूप में बोलचाल की हिन्दुस्थानी जनता की भाषा है। लेकिन पंजाबी प्रभाववाली इस बोलचाल की हिन्दुस्थानी के आधार पर दो साहित्यिक भाषाएँ बन गई हैं—एक हिन्दुओं में व्यवहृत होने वाली 'साधु-हिन्दी', यह देवनागरी अक्षरों में संस्कृत तथा शुद्ध हिन्दी शब्दों के प्रयोग से लिखी जाती है; और दूसरी, उत्तर-भारत के शिक्षित मुसलमानों में, और पंजाब और पश्चिमी उत्तर-प्रदेश में कुछ परिमाण में हिन्दुओं में व्यवहृत होने वाली 'उर्दू'—यह अरबी अक्षरों में लिखी जाती है; अरबी, फारसी शब्दों का इसमें बहुतायत से व्यवहार होता है; इसमें संस्कृत शब्द प्रायः नहीं होते हैं। साहित्य की इस हिन्दी और उर्दू दोनों में शब्द-रूप, धातु-रूप आदि एक ही होते हैं। पश्चिमी उत्तर-प्रदेश और पूरबी पंजाब की घरेलू मौखिक

हिन्दुस्थानी का व्याकरण, किसी-किसी बात में साहित्य की हिन्दी-उर्दू से कुछ अलग है। हिन्दी-उर्दू को या साहित्य की हिन्दुस्थानी को तोड़कर और सहज बनाकर उत्तर-भारत के भिन्न-भिन्न प्रान्तों में स्थानीय 'चलती हिन्दुस्थानी' या 'बाजारिया हिन्दी' बनी है; कलकत्ते की बाजारिया हिन्दी भी उसी कोटि की है। इस चलती या बाजारिया हिन्दी या हिन्दुस्थानी, जिसके बारे में पहले कहा जा चुका है, पूरबी पंजाब तथा पश्चिमी उत्तर-प्रदेश की घरेलू हिन्दुस्थानी से कुछ अलग है। इनका परस्पर का सम्बन्ध इस प्रकार का है:—(१) घरेलू हिन्दुस्थानी, (२) इसके आधार पर दिल्ली में बनी साहित्य की हिन्दुस्थानी—हिन्दी और उर्दू; (३) हिन्दी या उर्दू को तोड़कर चलती हिन्दुस्थानी या बाजारिया हिन्दी।

कांग्रेस ने हिन्दुस्थानी या हिन्दी को भारत की राष्ट्र-भाषा के रूप में स्वीकार कर लिया है। कांग्रेस-अनुमोदित हिन्दी या हिन्दुस्थानी व्याकरणानुमोदित शुद्ध हिन्दी या उर्दू है। हिन्दी और उर्दू का व्याकरण एक ही होने पर भी, लिपि के पार्थक्य के कारण और हिन्दी संस्कृतापेक्षी और उर्दू फारसी-अरबी-अपेक्षी होने से, एक ही मौखिक हिन्दुस्थानी भाषा की दो साहित्यिक शैलियाँ—दो भिन्न-भिन्न और परस्पर-विरोधी भाषाएँ बन गई हैं। हिन्दू-मुसलमान समस्या, उत्तर-भारत में हिन्दी-उर्दू समस्या के रूप में भी दिखाई पड़ी है। कांग्रेस हिन्दी या उर्दू दोनों में से किसको राष्ट्र-भाषा बनाना चाहती है, इसके बारे में स्पष्ट मत नहीं दे सकी है, कुछ धाँधली सी पैदा कर दी

है। केवल 'उर्दू' कहने से हिन्दू नाराज़ होंगे, 'हिन्दी' कहने से मुसलमान नाराज होंगे; कांग्रेस ने कह दिया है--'हिन्दुस्तानी' या 'हिन्दुस्थानी' भाषा भारतवर्ष की राष्ट्र-भाषा है, और यह राष्ट्र-भाषा देवनागरी या उर्दू अक्षरों में लिखी जायगी। उत्तरी भारत के मुसलमानों ने कांग्रेस से यह मनवा लेने की चेष्टा की है कि राष्ट्र-भाषा हिन्दुस्थानी, देवनागरी और उर्दू दोनों लिपियों में लिखी जायगी। लेकिन 'या' की जगह 'और' स्वीकृत नहीं हुआ। पर महात्मा गांधी से लेकर अधिकांश कांग्रेसी कार्यकर्ताओं के हिन्दू होने के कारण राष्ट्र-भाषा के तौर पर देवनागरी लिपि में लिखी हिन्दी का ही अधिक प्रचार है--खासकर विदेशी अक्षरों में लिखी और अरबी-फारसी शब्दों से बोझिल उर्दू जब बंगाली, उड़िया, मराठी, गुजराती, मारवाड़ी, मालवी, बिहारी, नेपाली और दक्षिण-भारत के तेलुगु, कन्नड़, तमिल, मलयालियों के लिए दुर्लेख्य और दुर्बोध्य है।

कांग्रेस ने हिन्दुस्थानी को अर्थात् कार्यतः साधु हिन्दी या व्याकरण-सम्मत हिन्दी को राष्ट्र-भाषा कहा है और प्रायः सारे भारत ने उसे स्वीकार कर लिया है। अब शुद्ध हिन्दी या उर्दू, भाषा के तौर पर उतनी सहज नहीं है। शुद्ध हिन्दी किताब के पन्नों में सीमित है। लेकिन इसके लघुरूप के तौर पर उधर बाजारिया हिन्दी लोगों की ज़बान पर जोरों से चल रही है। कांग्रेस-अनुमोदित राष्ट्र-भाषा किताबी हिन्दुस्थानी (या हिंदी) है; और सारे देश में लोगों की ज़बान पर सर्वत्र विद्यमान एक अति जीवित देश-भाषा या जन-भाषा के रूप में चलती हिंदी या बाजारिया हिंदु-

स्थानी वर्त्तमान है; यह परिस्थिति प्रणिधान-योग्य है।

सरल-व्याकरण-सम्मत चलती हिन्दुस्थानी जितनी सरल भाषा है, जटिल-व्याकरण-सम्मत किताबी हिन्दी या उर्दू उतनी ही कठिन भाषा है। किताबी हिन्दी या उर्दू की व्याकरण-संबंधी जटिलता, तीन बातों में चलती हिन्दुस्थानी से दूर हो जाने से, चलती हिन्दुस्थानी बहुत सरल बन पड़ी है।

ये जटिलताएँ निम्नलिखित हैं—

[१] विशेष्य (संज्ञा) की लिंग-विधि—शुद्ध हिन्दुस्थानी में केवल पुल्लिंग और स्त्रीलिंग है, नपुंसकलिंग नहीं है। संज्ञाएँ—यहाँ तक कि अप्राणिवाचक वस्तुओं के नाम भी—पुंल्लिंग हैं या स्त्रीलिंग। इस लिंग-निर्णय का कोई उपाय नहीं है—संस्कृत में प्रत्यय को पकड़कर शब्द के लिंग का निर्धारण किया जा सकता है, हिन्दुस्थानी में ऐसा नहीं होने का। 'किताब', 'पुस्तक'—स्त्रीलिंग हैं, 'ग्रन्थ'—पुँल्लिंग है; 'कागज'—पुंल्लिङ्ग; 'भात'—पुंल्लिङ्ग, 'दाल'—स्त्रीलिङ्ग; 'शब्द'—पुंल्लिङ्ग, 'बात'—स्त्रीलिङ्ग; 'जन्म'—पुंल्लिङ्ग; 'मृत्यु'—स्त्रीलिङ्ग। स्त्रीलिङ्ग शब्द के विशेषण में स्त्री-प्रत्यय लगाना पड़ता है: 'अच्छा कागज'—पु०, पर 'अच्छी किताब, अच्छी पुस्तक'—स्त्रीलिंग; 'अच्छा किताब, अच्छा पुस्तक'—साधु हिन्दी में अशुद्ध है, उसी तरह 'नई किताब' ('नया किताब' नहीं), 'मेरी सुनी हुई बात' (मेरा सुना हुआ बात नहीं), 'उसकी मृत्यु' ('उसका मृत्यु' नहीं) कहना पड़ेगा।

चलती हिन्दी से इस झंझट को एक दम दूर कर दिया गया

है। लोग 'मेरा बात, उसका बहू, अच्छा किताब, नया पुस्तक' आदि बेधड़क बोलते हैं। स्त्रीलिङ्ग के इस तर्कहीन उत्पात से चलती हिन्दुस्थानी ने अपने को मुक्त कर लिया है।

[२] 'का के, की'—षष्ठी विभक्ति के पुल्लिङ्ग में 'का, के' स्त्री लिङ्ग में 'की'। जिस पद के साथ षष्ठ्यन्त पद का सम्बन्ध है उसके पुंल्लिङ्ग और बहुवचन में होने पर 'के' प्रत्यय होता है, अन्यथा सम्बन्धी पद पुंल्लिङ्ग के एकवचन में कर्त्ता में होने पर 'का'; और अगर एकवचन पुंल्लिङ्ग सम्बन्धी पद के बाद दूसरे कारक द्योतक Post-positon या अनुसर्ग आते हैं तो भी षष्ठी में 'के' होता है; यथा—राजा-साहब का घोड़ा; राजा साहब के घोड़े; वहाँ के बाबू लोग; राजा-साहब के घोड़े को दाना दो; राजा-साहब के घोड़ों को दाना दो; इत्यादि।

चलती हिन्दी से 'का, के' एवं स्त्रीलिङ्ग में 'की' सम्बन्धी जटिलता बहुत कुछ दूर की गई है—साधारणतः केवल 'का' का ही व्यवहार होता है।

[३] क्रिया पद। साधु-हिन्दुस्थानी में—हिन्दी और उर्दू में—*भूत काल की क्रिया* के तीन 'प्रयोग' या रूप है—

(क) *कर्त्तरि प्रयोग*—अकर्मक क्रिया में, कर्त्ता के विशेषण के तौर पर क्रिया का व्यवहार; यथा—"वह आया" (सः आगतः), "वे आये" (ते आगताः)।

(ख) *कर्मणि प्रयोग*—सकर्मक क्रिया के भूत काल में कर्म के विशेषण के तौर पर क्रिया का प्रयोग होता है, कर्म के लिङ्ग और वचन के अनुसार क्रिया का लिङ्ग और वचन होता है;

कर्त्ता यथार्थ में कर्त्ता नहीं रह जाता, करण-कारक का पद हो जाता है; यथा—'उसने भात खाया' (=तेन भक्तं खादितं); 'उसने रोटी खाई' (=तेन रोटिका खादिता); मैंने एक घोड़ा देखा (=मया एकः घोटकः दृष्टः); मैंने तीन घोड़े देखे (=मया त्रयः घोटकाः दृष्टाः) ।

(ग) भावे प्रयोग—सकमर्क क्रिया में, कर्म कारक में 'को' अनुसर्ग जोड़ कर चतुर्थ्यन्त बनाया जाता है, क्रिया स्वतंत्र रहती है, कर्त्ता या कर्म किसी के साथ अन्वित नहीं होती; कर्त्ता करण की तरह, और कर्म सम्प्रदान की तरह काम करता है। जैसे—'उसने राजा देखा', 'उसने रानी देखी,' (तेन राजा दृष्टः, तेन राज्ञी दृष्टा) (कर्मणि प्रयोग); 'उसने राजा को देखा, राजाओं को देखा, रानी को देखा, रानियों को देखा, उन्होंने राजा को देखा, रानी को देखा, रानियों को देखा' (भावे प्रयोग) ।

चलती हिन्दी में इस जटिलता को दूर कर दिया गया है—एकमात्र कर्त्ता का प्रयोग ही चलता है; क्रिया के कर्त्ता में 'ने' अनुसर्ग के न रहने के कारण कर्त्ता में करण का भाव स्पष्ट या ऊह्य नहीं रहता, कर्त्ता कर्त्ता ही रहता है। कर्त्ता या कर्म के वचन-भेद से क्रिया के रूप में जो पार्थक्य शुद्ध हिन्दी में दिखाई पड़ता है, चलती हिन्दी में वह नहीं है—एकवचन के रूप से ही सारे काम चल जाते हैं। जैसे—वह आया, वह लोग आया, वह भात खाया, वह रोटी खाया, हम एक घोड़ा देखा, हम तीन घोड़ा देखा, हम राजा (या राजा को) देखा, हम रानी (या रानी को) देखा, इत्यादि ।

इसके अतिरिक्त, बहुत से मामलों में चलती हिन्दुस्थानी मुक्त, सहज और सरल है। किताबी हिन्दी का लिंग-विभ्राट् भाषा के लिए अनावश्यक बोझ मात्र है। उसी प्रकार, क्रियापद के भिन्न-भिन्न प्रयोग भी अनावश्यक हैं। हिन्दुस्थानी को राष्ट्र-भाषा—सब के लिए सहज ही में समझ में आने वाली और सीखी जाने वाली भाषा—बनाने के लिए इसे फौरन सरल बनाना आवश्यक है। हिन्दी संज्ञा के लिंग-भेद और क्रिया के प्रयोग-भेद के ऐतिहासिक कारणों को लेकर कितने लोग माथापच्ची करते हैं? इन जटिलताओं को आयत्त कर शुद्ध हिन्दी का व्यवहार करना हिन्दी के प्रचार के रास्ते में बहुत बड़ी बाधा है। आजकल उच्च-शिक्षित हिन्दी के विशेषज्ञों का युग नहीं है। जनता राष्ट्रीय आन्दोलन में सम्मिलित हो रही है, भविष्य में और भी अधिक सम्मिलित होगी। गण-महाराज का राज आ रहा है; इसी बीच वह सिंहनाद करके Slogan या नारा या संघनाद कर रहे हैं—'बोलो भाई, मजदूरों की जय'; Vox Populi, Vox Dei, 'वाग् गणस्य, वाग् देवस्य'—जनता का कंठस्वर देवता का कंठस्वर है। तैयार, सर्वजन-बोध्य, सहज, चलती हिन्दुस्थानी या बाजारिया हिन्दी की ओर न देख कर कठिन किताबी हिन्दी को राष्ट्र-भाषा बनाने की चेष्टा में समय गँवाने से 'अशर्फियाँ लुटें, कोयलों पर मुहर' जैसा होगा। दक्षिण भारत में—आन्ध्र, कर्णाटक, तमिलनाड और केरल में—हिन्दी-प्रचार के लिए पूरी कोशिशें हो रही हैं। लेकिन दक्षिण के द्रविड़-भाषी लोग उत्साह से हिन्दी सीखते समय लिंग-भेद और क्रिया-

पद के प्रयोग की जटिलता में गोते खा रहे हैं। हालत संगीन देखकर दक्षिण-भारत-हिन्दी-प्रचार-मंडली आदि के कार्यकर्त्ताओं ने उत्तरी भारत से फतवा मँगवाकर काम को आसान बना लिया है। तीन साल पढ़कर तीन परीक्षाएँ देकर उत्तीर्ण होने पर तब प्रमाण-पत्र दिया जाता है। इन तीन वर्षों के पाठ्य-क्रम और परीक्षाओं में से प्रथम दो वर्षों की परीक्षाओं में लिंग-भेद पर विशेष ध्यान नहीं दिया जाता। इस प्रकार कार्यतः चलती हिन्दुस्थानी को ही आंशिक रूप से स्वीकार कर लिया गया है।

कुछ दिनों से मैं शुद्ध या साधु हिन्दी के साथ ही चलती हिन्दी को राष्ट्रीय कार्य में कुछ स्थान देने का प्रस्ताव करता आ रहा हूँ। १९३५ के अप्रैल महीने में इन्दौर में होने वाले अखिल-भारतीय-हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन में मैंने इस विषय में एक हिन्दी निबन्ध लिख भेजा था। इसमें मैंने लिखा था—'गलत-ए-आम-फसीह व सहीह' अर्थात् आम लोग जो गलतियाँ किया करते हैं—एक राय से की गई भूल—वही सुन्दर और शुद्ध है, इस नीति को भाषा के सम्बन्ध में मान ही लेना चाहिए। "महा-जनो येन गतः स पन्थाः"—महाजन अर्थात् जनता जिस रास्ते को अपनाती है वही रास्ता है। जनता की बोलचाल की हिन्दी, चलती हिन्दी,—यही भारतवर्ष के मिलन की सच्ची भाषा Lingua Indica है। इसी के आधार पर ही भारत की राष्ट्र-भाषा बनाना सहज होगा।

[इस प्रकार की हिन्दी के कई नाम दिये गये हैं—"चालू हिन्दी, चलतू हिन्दी, लघु हिन्दी, बाजारी हिन्दी, बाजारू

हिन्दी" और Basic Hindi. अँगरेजी में हाल ही में एक प्रकार की सरली कृत अंग्रेजी भाषा का प्रचार दिखाई पड़ रहा है—इसका नाम Basic English रखा गया है। श्री C. K. Ogden अगडेन जो इस Basic English अर्थात् "व्यावहारिक या मौलिक अँगरेजी" का संगठन और प्रचार कर रहे हैं, वह मुख्यतः इसकी शब्दावली को सहज करने के लिए काम कर रहे हैं, व्याकरण को लेकर कोई खास माथापच्ची नहीं कर रहे हैं। इसकी शब्दावली में British, American, Scientific, Industrial और Commercial (या Cultural)—ये कई प्रकार के शब्द लिये जाँय, इसपर उन्होंने ध्यान रखा है। इन अँगरेजी शब्दों के आदि अक्षर B-A-S-I-C को लेकर Basic शब्द सार्थक शब्द के रूप में व्यवहार किया गया है। हम 'चलती' या 'व्यावहारिक' हिन्दी के लिए अँगरेजी Basic Hindi नाम को प्रचार के सुभीते का ध्यान रख कर ले सकते हैं। लेकिन हिन्दी के लिए प्रयुक्त अँगरेजी Basic शब्द इन हिन्दी शब्दों के आदि अक्षरो के रोमन प्रतिरूप को लेकर बना है—(१) भारतीय (Bha'rati'ya), (२) आधुनिक या आजकल की (A'dhunik, ya A'j-Kal-Ki'), (३) संस्कृत-मूलक (Sam'skr't-mu'lak) या संस्कृत-भरी (Sam'skr'it-bhari'), (४) इस्लामी (Isla'mi') और (५) चलती या चालू (Calti' ya ca'lu')। अर्थात् यह चलती या व्यावहारिक हिन्दी सारे भारत के लिए उपयोगी भाषा होनी चाहिए, आधुनिक युग के अनुकूल होनी चाहिए, संस्कृत शब्दों की ओर इसका स्वाभाविक झुकाव होना चाहिए,

मुसलमान धर्म के लिए आवश्यक समस्त अरबी-फारसी शब्दों का स्थान इसमें रहेगा, और यह लोक-समाज या जनता में बहुल-प्रचारित चालू भाषा होगी।]

मेरी राय में हिन्दी के व्यवहार को जनता में व्यापक करने के लिए इस Basic Hindi या चलती हिन्दी को स्वीकार करने से बहुत आसानी होगी। साधु हिन्दी कोई ऐसी प्राचीन भाषा नहीं है कि इसके लघु या बोलचाल के रूप चलती हिन्दी को मान लेने से भाषा-सम्बन्धी विपर्यय या अपकार हो। उच्च कोटि की साहित्य रचना में जो शुद्ध रूप मे साधु हिन्दी लिख सकते हैं, वे लिखें। लेकिन सभा-समितियों में, बंगाल, बिहार, महाराष्ट्र, आन्ध्र आदि दूर के प्रान्तों के लोगों के लिए, और उत्तर भारत के अशिक्षित लोगो के लिए, चलती हिन्दी के व्यवहार के अधिकार को मान लिया जाय—जो शुद्ध हिन्दी नहीं बोल सकेंगे, उन्हे चलती हिन्दी बोलने दिया जाय। सुकुमार साहित्य के अतिरिक्त, समाचार-पत्र आदि में इस चलती हिन्दी का व्यवहार हो। बाद में दिसम्बर १९३५ में मैसूर में होने वाले अखिल-भारतीय प्राच्य-विद्या विषयक महा सम्मेलन में नवीन या आधुनिक भारतीय-आर्य-भाषा-विभाग के सभापति की हैसियत से इस चलतो हिन्दी के पक्ष में मैंने कुछ कहा; और कलकत्ते की अधुना लुप्त, 'नूतन पत्रिका' में जनवरी १९३६ के अंक में कुछ लिखा। चलती हिन्दी के पक्ष में मुझे बहुतेरे लोगों के अनुमोदन प्राप्त हुए हैं। मेरे एक विद्यार्थी श्रीमान् मुहम्मद हमीदुल्लाह, एम. ए., पुराने दिल्ली निवासी और विद्वान वंश के हैं। कुछ वर्ष हुए

उन्होंने Calcutta Review पत्रिका में लिखे एक निबन्ध में इस चलती हिन्दुस्थानी को Basic Hindustani कहते हुए भारत की भविष्य की राष्ट्रभाषा के तौर पर स्वीकार किया है।

कांग्रेस में राजनीतिज्ञों का एक समूह बहुत दिनों से इस बात की चेष्टा कर रहा है कि कांग्रेस का काम हिन्दुस्थानी या हिन्दी को छोड़कर (अर्थात् शुद्ध व्याकरणानुसारी हिन्दी के अलावा) और किसी भाषा में नहीं करने दिया जायगा—अंगरेजी का भी वर्जन किया जायगा। इससे मौजूदा स्थिति में कितना बड़ा अनर्थ और विरोध होगा, इस बात पर वे विचार नहीं करते हैं। एक तो हिन्दी-उर्दू का झगड़ा होगा ही; इसके अलावा, बंगाली और दक्षिण-भारत के द्राविड़-भाषी, इस भाषा-गत साम्राज्यवाद को अत्याचार समझेंगे, इसे स्वीकार नहीं कर लेंगे। साधु हिन्दी के लिंग-भेद के और भूत काल की क्रियाओं के भिन्न-भिन्न प्रयोगों की पेचीदगियों को छोड़कर, चलती हिन्दी की ओर झुकने से हिंदी का प्रचलन सहज होगा। कारण यह है कि इस चलती हिंदी को थोड़ा बहुत हम सभी बोलते हैं; बंगाल की तरह, इसमें संस्कृत शब्दों की सहायता लेकर उच्च अंगों के भावों को व्यक्त करना और सभाओं में भाषण आदि देना और बहस करना उतना कठिन नहीं होगा।

चलती हिन्दी का एक पक्का रूप निश्चित कर देना उतना सहज काम नहीं है, पर भारत के भिन्न-भिन्न प्रान्तों की चलती हिन्दी पर विचार करके, इसके *शब्द-रूप* और *धातु-रूप* आदि के *न्यूनतम प्रयोगों* को चलती हिन्दी का रूप मान लिया जा सकता

है। चलती हिन्दी का उच्चारण साधु-हिन्दी अथवा पश्चिमी उत्तर-प्रदेश की बोलचाल की भाषा का अनुसरण करने वाला होगा। नीचे चलती हिन्दी के व्याकरण के नियम संक्षेप में देने की चेष्टा कर रहा हूँ।

मेरी राय में चलती हिन्दी को 'भारत-रोमक' या 'भारतीय रोमन' वर्णमाला में लिखना चाहिए—और मेरा विश्वास है भविष्य में होगा भी यही। लेकिन वर्त्तमान स्थिति में हिन्दी की (और उर्दू की) तरह देवनागरी (और फारसी) लिपि में चलती हिन्दी को लिखा जा सकता है।

BASIC HINDI या व्यावहारिक अथवा चलती हिन्दी का व्याकरण

(१) शब्दरूप—संज्ञा

लिंग-भेद प्रकृति के अनुसार होता है, स्त्रीलिंग शब्द के विशेषण में 'ई' प्रत्यय और स्त्रीलिंग शब्द से सम्बन्धित संबंधी पद का अनुसर्ग 'की' नहीं होता। जैसे—'काला घोड़ा, काला घोड़ी; अच्छा लड़का, अच्छा लड़की; राजा का बेटा, राजा का बेटी; किसी राजा का एक बेटी था, वह बहुत सुन्दर था; उसका बहन विधवा हो गया'; इत्यादि।

अर्थ के अनुसार संज्ञा में (विशेषण या क्रिया में नहीं) स्त्री लिंग का प्रत्यय लगता है, जैसे—'बुड्ढा (बूढ़ा आदमी), बुड्ढी (बूढ़ी स्त्री); मामा-मामी; धोबी-धोबिन; इत्यादि। लेकिन 'बुड्ढा आदमी, बुड्ढा औरत या स्त्री।'

विभक्ति जोड़कर बहुवचन नहीं बनता—'लोग, सब, समूचा' आदि बहुवचन-सूचक शब्दों को जोड़कर बनाया जाता है। 'घोड़ा'—बहुवचन में 'घोड़े', 'बात—बातें', 'स्त्री—स्त्रियाँ', इस तरह के शुद्ध हिन्दी जैसे प्रयोग चलती हिन्दी में नहीं होते; चलती हिन्दी—'घोड़ा-सब, बात-सब, स्त्री-लोग' आदि। शुद्ध हिन्दी के टेढ़े अर्थात् अनुसर्ग-ग्राही रूपों का व्यवहार चलती हिन्दी में नहीं है; शुद्ध हिन्दी के 'घोड़े पर, घोड़ों पर,' की जगह इसमें 'घोड़ा पर, घोड़ा सब पर' इस तरह का प्रयोग देखा जाता है।

अनुसर्ग—करण-रूपी कर्त्ता का 'ने' प्रत्यय अज्ञात है। सम्बन्ध कारक में 'का, के, की' की जगह केवल 'का' होता है; पर दूसरे अनुसर्ग या कारक-सूचक शब्दों के बाद में आने पर 'का' की जगह 'के' प्रत्यय का व्यवहार किया जा सकता है। जैसे—'राम आया; राम देखा; राम गोपाल को मारा ('राम ने' नहीं); घर का मुर्गी; घर का लोग-सब; उसके लिए, हम-लोग-के वास्ते', इत्यादि।

(२) सर्वनाम—

चलती हिन्दी में उत्तम और मध्यम पुरुष में 'मैं, तू' का प्रयोग नहीं है।

उत्तम पुरुष—'हम—हम-लोग; हमारा—हम-लोग का; हम-को, हम से, हम पर, इत्यादि—हम-लोग को, से, पर' इत्यादि।

मध्यम पुरुष—साधारण—'तुम—तुम-लोग ; तुम्हारा, तुमारा—तुम-लोग-का; तुम (बहुवचन तुम-लोग) का, से, पर', इत्यादि।

'बीस-पाँच', 'उन्तीस' की जगह 'बीस-नौ', 'छत्तीस' की जगह 'तीस-छः', अठावन की जगह 'पचास-आठ', 'तिरासी' की जगह 'अस्सी-तीन' इत्यादि, इससे संख्या-वाचक शब्द संख्या मे कम होते हैं, अर्थ समझना भी सहज होता है।

(४) क्रिया का रूपान्तर—

वचन और लिंग भेद से क्रिया के रूप में अन्तर नहीं होता। एक ही रूप से तीन पुरुषों और दोनों वचनों का काम होता है। कर्मणि और भावे प्रयोग अज्ञात हैं। सकर्मक क्रिया के भूतकाल के रूप में, कर्त्ता में 'ने' प्रत्यय का व्यवहार नहीं होता।

अस्तित्व-वाचक धातु 'हो'—

(१) अनुज्ञा—'तुम होओ, हो—आप होइए'।

(१ क) भविष्यत् अनुज्ञा—'तुम होयगा, आप होइयेगा'।

(२) क्रिया का साधारण रूप—'होना'; अनुसर्ग युक्त होने पर 'होने'।

(३) शतृवाचक या वर्त्तमानकालिक विशेषण—'होता'।

(४) भूतकालिक विशेषण—'हुआ'।

(५) अपूर्ण भूतकालिक विशेषण—'होता हुआ'।

(६) सामान्य वर्त्तमान—'है'।

(७) संदिग्ध वर्त्तमान—'हो' या 'होवे'।

(८) अपूर्ण वर्त्तमान—'होता है'।

(९) पूर्ण वर्त्तमान—'हुआ है'।

(१०) सामान्य भूत—'था (अस्तित्व-वाचक), हुआ (घटना-वाचक)'।

(११) अपूर्ण भूत—'होता था'।

(१२) पूर्ण भूत—'हुआ था'।

(१३) हेतुहेतुमद्भूत—'होता' (यदि, अगर) 'होता'।

(१४) सामान्य भविष्यत्—'होगा, या होयगा'।

(१५) संदिग्ध वर्तमान—'होता होगा'।

(१६) पूर्ण भविष्यत् या संदिग्ध भूत—'हुआ होगा'।

(१७) कर्तृवाचक विशेषण—'होने-वाला'।

दूसरी धातु—'चल, देख'।

(१) 'चलो, चलिये; देखो, देखिये'।

(१ क) 'चलेगा, चलियेगा; देखेगा, देखियेगा'।

(२) 'चलना (चलने+); देखना (देखने+)'।

(३) 'चलता, देखता'।

(४) 'चला; देखा'।

(५) 'चलता हुआ; देखता हुआ'।

(६) और (७) 'चले; देखे' (=प्राचीन सामान्य वर्त्तमान, आधुनिक संदिग्ध वर्त्तमान)।

(८) 'चलता है; देखता है'।

(९) 'चला है; देखा है'।

(१०) 'चला; देखा'।

(११) 'चलता था, देखता था'।

(१२) 'चला था'; देखा था'।

(१३) 'चलता; देखता'; (यदि अगर) 'चलता; देखता'।

(१४) 'चलेगा; देखेगा'।

(१५) 'चलता होगा, देखता होगा'।

(१६) 'चला होगा; देखा होगा'।

(१७) 'चलने वाला; देखने वाला'।

आदरार्थे व्यवहृत सर्वनाम 'आप' के साथ अनुज्ञा में कुछ धातुओं में 'इये' के स्थान पर 'ईजिये,' भविष्य में 'ईजियेगा' प्रत्यय होता है; जैसे—'कर—करिये, कीजिये, कीजियेगा; ले, दे—लीजिये, लीजियेगा; दीजिये, दीजियेगा; पी—पीजिये, पीजियेगा'; 'जा'—भूत में 'गया'; 'कर'—भूत में 'किया';—इन दोनों के रूप भी लक्षणीय हैं।

णिजन्त आदि दूसरे क्रियापद और दूसरे सभी साधारण रूप शुद्ध हिन्दी के ही अनुकारी होते हैं, इस विषय में ब्योरा भारत के भिन्न-भिन्न अंचलों में प्रचलित हिन्दी की धातु-रूपावलियों ही के अनुसार निर्धारित करना होगा।

शब्दावली के विषय में चलती हिन्दी बहुत ही उदार है—इसमें प्रविष्ट और बहुशः व्यवहृत अरबी, फारसी या अंगरेजी शब्दों के बहिष्कार की चेष्टा नहीं की गई है। लेकिन उच्चभावों के शब्द आवश्यकतानुसार संस्कृत से ही लेना चलती हिन्दी के लिए स्वाभाविक होगा। शुद्ध हिन्दी-उर्दू में जो प्राकृतज और देशी एवं अर्ध-तत्सम शब्द प्रचलित हैं, वे ही चलती हिन्दी के देह-स्वरूप हैं।

नीचे चलती हिन्दी या बाजारिया हिन्दुस्थानी के कुछ नमूने दिये जा रहे हैं—

[१] उतरंगा (या उत्तरी, उत्तर-का) हवा (या बयार)

और सूरज, इस बात पर झगड़ रहा था (या झगड़ा करता था), कि हम दोनों-में कौन अधिक बली (अधिक बलवन्त, अथवा ज्यादा ताकतवर) है। तब उस समय (या उस वक्त) उस तरफ गरम चादर ओढ़ा-हुआ एक मुसाफिर (या राही, बटोही) आ गया। इन दोनों-में यह (ई) तय (निश्चय) हुआ कि, जो पहिले मुसाफिर-का चादर उतार दे सकेगा, वह ही (ऊ ही) ज्यादा बली समझा जायगा। तब उत्तर-का हवा बहने लगा। पर हवा जितना बहा, मुसाफिर उतना जोर-के साथ चादर-को अपना देह (बदन) पर लपेटता गया। अन्त में (आखिर) हवा अपना जतन (चेष्टा, कोशिश) छोड़ दिया। तब सूरज अपना पूरा तेजी के साथ उगा, और मुसाफिर गरमी-का कारण (वास्ते) अपना चादर उतार लिया। इस-से उत्तरी हवा को मानना पड़ा कि, दोनों में सूरज ही ज्यादा बली है।

भारत-रोमक लिपि में ऊपर वाली हिन्दी-कथा

utaran'ga' (uttari', uttar-ka') hawa' (baya'r) aur su'raj, is ba't par jhagar' raha' tha' (jhagr'a' karta' tha'), ki ham donon, men, kaun adhik bali' (adhik balawanta zya'da' ta'katwar) hai. tab us samay (us wakt) us taraph garam ca'dar or'ha' hua' ek musa'fir (ra'hi', bat'ohi') a' gaya'. in donon, men, yeh (i') tay (nis'cay) hua ki jo pahile musa'fir-ka' ca'dar uta'r de sakega', woh hi' (u' hi') zya'da' bali' samajha' ja'yaga'. tab uttar-ka' hawa' bahane laga'. par hawa'

jitana' baha' musa'fir utana' zor ke sa'th ca'dar-ko apana' deh (badan) par lapet'ata' gaya'. anta-men,' (a'kh'ir) hawa' apana' jatan (ces't'a' kos'is') chor' dia'. tab su'raj apana' pu'ra' teji'-ke sa'th uga' aur musa'fir garami'-ka' ka'ran' (wa'ste) apana' ca'dar uta'r lia'. is-se uttari' hawa' ko ma'nana' par'a' ki donon,-men, su'raj hi' zya'da' bali' hai.

[२] एक आदमी-का दो बेटा था। उन दोनों-में-से छोटा बेटा बाप-से कहा कि, "बाबा आप-का माल-का (धन-दौलत-का) जो हिस्सा (अंश , बखरा) हम-को मिलेगा, उस-को हम-को दे दीजिये।" तब बाप अपना माल अपना दो बेटा-को बाँट दिया। कुछ दिन बाद, छोटा बेटा अपना हिस्सा-का सब कुछ इकट्ठा कर-के, दूर देश-में चला गया, और वहाँ लुचपन-मे दिन बिताता हुआ, अपना सब रुपया-पैसा उड़ा दिया। जब ऐसे सब-कुछ उड़ा दिया, तब उस देश-में बड़ा अकाल पड़ा। वह (ऊ) बहुत गरीब हो गया। तब वह उस देश-का किसी बड़ा आदमी-का यहाँ जा-कर रहने लगा। वह आदमी अपना सूअर-सब चराने को उस-को खेत-में भेज दिया। और वह चाहता था कि, "ऊ-सब छीमी से हम पेट भर ले, जिन-को सूअर खा लेता है।" पर कोई उस-को कुछ न देता था। तब उस-को चेत हुआ, और ऊ सोचने लगा कि, "हमारा बाप-का यहाँ इतना अधिक रोटी तैयार होता है कि कितना मजदूर-लोग पेट भर के खाता है, और बचा के रखता भी है, और यहाँ हम भूख-से

मरता है; हम अभी उठता है, और हमारा बाप-के पास हम जायगा, और कहेगा कि, "पिताजी, भगवान के सामने और आपके सामने हम पाप किया; हम फिर आप-का बेटा कहाने के जोग नहीं; हमको अपना मजदूर-लोग में-से एक का नाईं रखिये।" तब वह उठ कर अपना बाप-के पास चला। पर वह दूर ही था कि उसका बाप उसको देखकर मन-में दया किया, और दौड़ कर उसको चूमने लगा। तब बेटा कहा—"पिताजी, भगवान के सामने और आप-के सामने हम पाप किया है, और आप-का बेटा कहाने जोग हम नहीं।" पर बाप अपना चाकर लोग से कहा कि, "सबसे अच्छा कपड़ा इसको पहिनाओ, इसका हाथ में अँगूठी और पैर-में जूता दो। और चलो हम-लोग खाय और आनन्द करे; क्योंकि ई हमारा बेटा मरा ऐसा था, फिर जिया है; हेराय गया था, फिर मिला है।" तब वे-लोग सुखित मन-से (खुशी मना-कर) आनन्द करने लगा।

उसका बड़का बेटा उस समय-में खेत-में था। घर लौटता हुआ जब वह घर-का नजदीक पहुँचा, तब वह नाचने-बजाने-का आवाज सुना। वह अपना नौकर-लोग-में-से एक आदमी-को बुलाकर पूछा—"ऐ-सब क्या है?" ऊ नौकर उससे कहा कि, "आपका भाई आया-है, और आप-का पिताजी एक जेवनार किया है, क्योंकि उसको भला-भला पाया है।" इससे बड़का बेटा गुस्सा किया (खफा हुआ, क्रोध दिखाया), और घर-के भीतर जाने न चाहा। तब उसका बाप आ-कर उसको मनाने लगा। ऊ अपना बाप-से जवाब दिया कि, "हम इतना बरस-से

आप-का टहलदारी करता है, और आप-का हुकुम-का बरखिलाफ काम हम कभी नहीं किया; पर आप हम-को कभी एक पठरू (बकरा) न दिया, कि हम अपना दोस्त-लोग-के संग मिलकर खाना-पीना करे। पर आपका ई बेटा, जो रंडी-लोग के साथ आपका धन-को उड़ा दिया—ऊ जैसा आया, तैसा ही आप उसके लिए बढ़िया जेवनार किया है।" बाप उससे कहा—"ऐ बेटा, तुम सदा हमारा साथ है, और जो कुछ हमारा है, ऊ-सब तुमारा ही है; पर खुशी मनाना और आनन्द करना मुनासिब है, क्योंकि ई तुमारा भाई मरा ऐसा था, फिर जिया है,—हेराय गया था, फिर मिला है।"

[३] सर जान सायमन-को मास्को देखने-के लिए जो नेवता दिया गया, रूस-का सोवियट सरकार-का लन्दन-में स्थित दूत-द्वारा रूसी सरकार उस नेवता-को यथारीति समर्थित करता है; पर उस नेवता-को सर जान सायमन स्वीकार करेगा या न, इस पर कुछ सिद्धान्त अब तक नहीं हुआ। ऐसा संभव है कि सर जान सायमन पहिले लन्दन-से लौट कर हर हिटलर-से किया हुआ आलोचना-का नतीजा लन्दन-का मंत्रिमंडल-का सामने पेश करेगा; उसके बाद फिर ऊ रूस-का सैर पर ध्यान देगा।

[४] यूगोस्लाविया-का माल-जहाज 'बकानिका'-को बचाने-के लिए और तीन जहाज यात्रा किया है। फ्रांस-का उपकूल-से (किनारा-से) अढ़ाई सौ मील दूर उत्तर अटलांटिक महासागर-का किसी स्थान से ऊ जहाज अपना आफत-का संदेशा बताने-के लिए ज़रूरी बेतार खबर भेजा था।